लिए अनाज पीसना पड़ता था। शुरू में वे समतल पत्थर पर लोढ़े से आटा पीसती थीं और बाद मे उन्होंने चक्कियाँ बना लीं।

आजकल भी दुनिया के बहुत से हिस्सों में गाय-भैंस आदि दूध देने वाले जानवर औरतें ही दुहती हैं, लेकिन इन मवेशियों को चराने के लिए घास के मैदानों में आदमी ही ले जाते थे। खेती करने वालों के अलावा अहीर और गडरिये खाद्य-पदार्थ उत्पन्न करने वालों में से खास थे। ये मवेशी ही उनका धन थे, इसलिए लोग इनकी रक्षा करने के लिए क़िले बनाने लगे। क़िलों

इन्सान की कहानी

मुल्कराज आनन्द

चित्रकार

एम० चावडा

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

सुन्दर नक्काशी की हुई लकडी का बना और देखने मे विशाल-काय होता था। इसे चलाना आसान नहीं था। शायद आपको याद होगा कि कुरु-क्षेत्र के रणस्थल मे भगवान् कृष्ण के सिवाय अन्य कोई अर्जुन के रथ के लिए योग्य सारथी न प्रमा-णित हो सका। मिस्र का रथ हल्का होता था। इसका ढॉचा लकडी का था और बटी हुई रस्सियों की जाली से रथ का फर्श या बैठने का तैयार
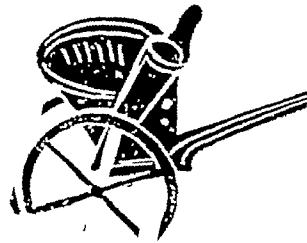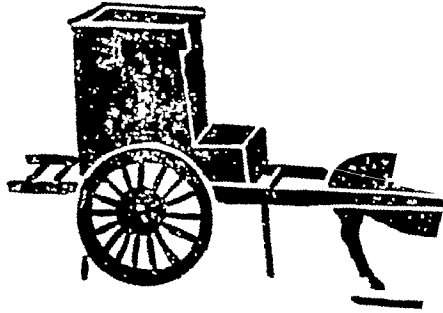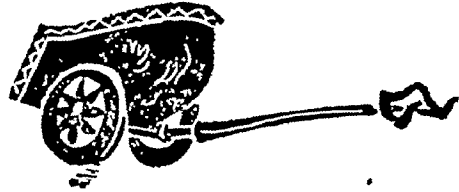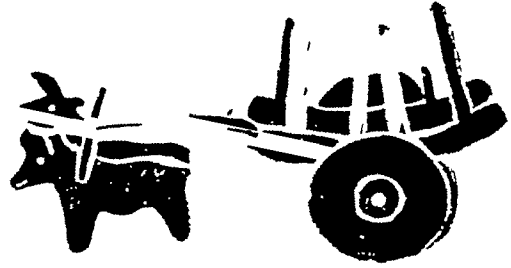
प्रथम संस्करण, १९५३
द्वितीय आवृत्ति, १९५६
तृतीय आवृत्ति, १९५७

मूल्य रुपये ३ ००

प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
मुद्रक—श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

गारे होते थे। यह अत्यन्त शीघ्रगामी होता था।

रोमवासियों ने यूनान के रथों की अपेक्षा इसका अच्छा विकास किया। उन्होंने अपने रथ लकड़ी के बनाये। रास्ते की परेशानियों से बचने के लिए उन्होंने धुरों मे आरे लगाए।

युद्ध में काम आने तथा एक स्थान से दूसरे स्थान को सामान ले जाने में उसकी सहायता लेने से पहले भी पहियों का उपयोग कुओं से पानी खींचने मे होता था। लोग पहले रस्सी की सहायता से चमड़े के डोल द्वारा पानी निकालते थे। यह कार्य कठिन था क्योंकि यदि कोई शरीर का सन्तुलन खो बैठता तो कुएँ में जा गिरता।

इसके बाद कुएँ से पानी निकालने का एक अधिक सरल रास्ता निकला। डोल रस्सी के एक सिरे से बाँध दिया जाता था और उसका दूसरा सिरा एक ऐसी लम्बी या बाँस से बँधा रहता था जिसके दूसरे छोर पर एक भारी पत्थर लटकता रहता था। तत्पश्चात् लकडी की गोल चरखी का आविष्कार हुआ। हाथ से जैसे ही चरखी चलाई जाती उसके ऊपर रस्सी भी लपेटा खाती और घडा कुएँ की पाट के पास ऊपर आ पहुँचता। हमारे देश के
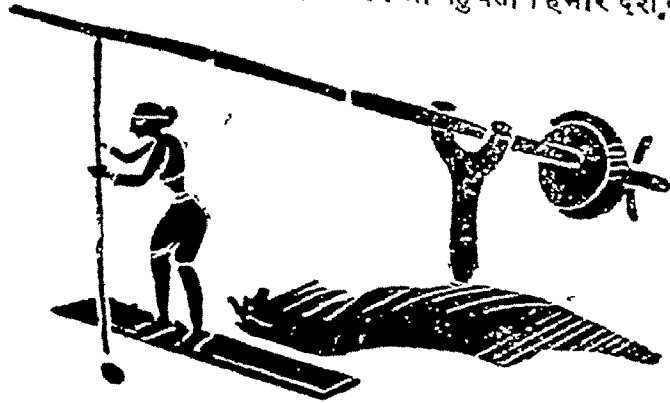
बलवन्त गार्गी के नाम

प्रिय बलवन्त,

जब तुम मेरे पास मेरे प्रकाशक का सन्देश यह पुस्तक लिख देने के लिए लाये, जिसका वादा मैंने पिछले साल किया था, तो मैंने बिना सोचे-समझे ही कि मैं क्या कर रहा हूँ 'हाँ' कह दिया था।

बाद में मुझे एहसास हुआ कि मैंने वह वचन उतावलेपन में ही दे दिया था, क्योंकि जो पुस्तक मैं लिखना चाहता था उसका अस्पष्ट-सा शीर्षक मेरे दिमाग मे था—"इन्सान की कहानी'। और इस प्रकार की पुस्तक एक दिन में नहीं लिखी जा सकती। उसमें वर्षों लगेंगे। भूतकाल के बारे मे हम बहुत कम ज्ञान रखते हैं और इसका अनुमान लगाना भी मुश्किल है कि वास्तव मे हुआ क्या था।

और फिर भी जब मैंने इस मामले पर सोचा तो मुझे महसूस हुआ कि पुस्तक अवश्य लिखी जानी चाहिए—या तो अभी ही, और नहीं तो फिर कभी नहीं। यदि यह पुस्तक लम्बी न हो सके तो छोटी ही सही, क्योंकि मेरी दृढ़ भावना है कि इन्सान आज चौराहे पर खडा है। वह इतिहास की लम्बी सडक पर यात्रा करता आया है। कई सड़कों पर वह भटक चुका है। टेढी-मेढी गलियों मे वह कई बार खो चुका है और बार-बार वह जीवन के रास्ते पर निकल आया है। लेकिन अब उसे अपने भविष्य का मार्ग चुन लेना है। जैसा कि अधिकाश विचारशील लोग जानते हैं, और मुझे भी महसूस होता है, इस बात पर बहुत-कुछ निर्भर है कि वह कौनसा रास्ता अपनाएगा।

इस चौराहे पर जीवन के विभिन्न मार्गों का निर्देशन करते हुए मार्गसूचक स्तम्भ लगे है—ऐसे जो हमे खाद्यान्न से भरपूर खेतों और नये बाँधों से सींचे जाने वाले हरे-भरे मैदानों और प्रकाश, प्रेम और प्रसन्नता से भरपूर सुन्दर नगरों की ओर ले जा सकते हैं, और दूसरे मार्ग-सूचक स्तम्भ ऐसे जो मृत्यु, मायूसी, निराशा और अराजकता के मार्गों का निर्देशन करते हैं।

दुनिया मे करोड़ों इन्सान हैं, वे कई विभिन्न मार्ग चुनेंगे।

एक समय था जब मैं सोचा करता था कि जीने की इच्छा इन्सान को हमेशा जिन्दगी की राह चुनने को बाध्य करेगी, मौत की नहीं। परन्तु आज मुझे इस पर ज्यादा यकीन नहीं है, क्योंकि कई चालाक लोग इन्सान को गलत रास्ते पर ले जा रहे हैं। और इन्सान के भय, शकाएँ और खास तौर पर उसकी पक्ष-पात की भावनाएँ उसे और घबरा देती हैं। यदि हम सतर्क न रहे तो हमारी विवेक बुद्धि असफलता को प्राप्त होगी।

तो फिर हम कैसे जानें कि सही दिशा कौनसी है। क्या जो मार्गसूचक स्तम्भ जिन्दगी की राह का निर्देशन करते है वे वास्तव में सच्चे हैं? तो फिर आखिर रास्ता कौन दिखाएगा?

पहले दो सवालों का जवाब तभी दिया जा सकता है जब हम तीसरे सवाल का जवाब दे और वह जवाब है—हरेक इन्सान के लिए अपना रास्ता स्वय ढूँढना जरूरी है।

लोग पूछते हैं, "लेकिन कैसे?" "हरेक इन्सान अपना रास्ता खुद कैसे ढूँढ सकता है?"

मेरा विश्वास है कि हरेक इन्सान अपना रास्ता चौराहे पर रुककर और अपने-आपसे कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल पूछकर पा सकता है। मैं इतनी दूर तक कैसे आया? मेरे बुजुर्गों ने इस रास्ते पर आने में मेरी क्या मदद की थी? और मुझमें वह शक्ति कहाँ से आती है जो मुझे आगे बढ़ने को प्रेरित करती है?

यदि कुछ इस तरह के सवाल पूछे जायँ और उनका जवाब दिया जाय तो इन्सान को ये मार्गसूचक स्तम्भ देखते-ही-देखते खुद अपने-आपमें ही वह प्रकाश मिल जायगा जो उस अँधेरी रात को रोशन कर सकता है जिसमे वह खड़ा है।

क्योंकि वह देखेगा कि अपनी कमज़ोरियों, अज्ञान और इतिहास की बेवकूफ़ियों पर विजय पाने के लिए उसने और उसके बुजुर्गों ने जो-कुछ किया वह कितना विलक्षण है। इन्सान ने अपने-आपको गरम रखने के लिए आग कैसे जलाई, जबकि दुनिया में सिवाय बरफ़ के और कुछ था ही नहीं। कैसे उसने आग पर 'नियन्त्रण' पाया, यहाँ तक कि अब वह जब चाहे बटन दबाते ही बिजली के बल्ब से रोशनी कर सकता है। कैसे उसने सुन्दर-सुन्दर मकान और मन्दिर बनाए, जबकि पहले-पहल वह केवल पहाड़ों की कन्दराओं मे रहता था। कैसे उसने ज़मीन से मौसम की खराबी, आँधियों, ताप, शीत और पानी की कमी के बावजूद भोजन उपजाना सीखा।

सचमुच इन्सान एक आश्चर्यजनक जानवर है—बाकी सभी जानवरों से बड़ा, क्योंकि वह सोच सकता है, अनुभव कर सकता है और अपने ऊपर व अपने आसपास की चीज़ों पर नियन्त्रण कर सकता है। वह फूल उगा सकता है और खूब-सूरत बगीचे बना सकता है। वह पत्थर तराश सकता है और उससे सुन्दर-सुन्दर आदमियों, औरतों और अपने मे स्वयम्भूत शक्तियों की, जिन्हें वह देवता कहता है, मूर्तियाँ बना सकता है।

वह चट्टानो पर रेखाएँ खींच सकता है और कागज़ पर रेखाएँ, जो गाती हुई मालूम होती हैं। वह उन तस्वीरों मे ऐसे रग भर सकता है कि दूसरे इन्सानों की आत्मा उन पर नजर पडते ही फड़क उठे। वह पशु-पक्षियों, पेडो और पानी की गतिविधि को पकड सकता है और अपने शरीर के हाव-भाव द्वारा उन्हें सौन्दर्य से परिपूर्ण मादक नृत्यों मे प्रकट कर सकता है। वह अपने और दूसरों के विचारो व भावनाओं पर काबू पा सकता है और उन्हें दिल व आत्मा के भावुक चित्रों के रूप मे पूरी नजाकत के साथ कागज पर लिपिबद्ध कर सकता है। वह खुद अपनी मेहनत कम करने के लिए और हवा मे उडने के लिए मशीने बना सकता है। वह रेडियो पर बोल सकता है ताकि उसकी आवाज हजारों मील दूर भी सुनाई पडे। वह परदे पर परछाइयों को बुला, चला और गवा सकता है—इस खूबसूरती के साथ जैसे वे आदमी और औरते ही हों। वह पृथ्वी की सारी शक्ति को आणविक ढेर मे समो सकता है और आज यदि वह चाहे तो उस शक्ति का उपयोग इस प्रकार कर सकता है कि सारी दुनिया मे कुछ ही वर्षों मे लहलहाती फसले पैदा हो जायँ और इस तरह दुनिया को गरीबी और बीमारी के चगुल से निकाला जा सके। यदि वह करना चाहे तो कुछ भी कर सकता है। इसी आश्चर्यजनक शक्ति से, जो उसने आणविक समूह में एकत्र कर रखी है, यदि इसे वह अणुबम के रूप मे इस्तेमाल करे तो वह अपने-आपको नेस्तोनाबूद भी कर सकता है।

मै, सक्षेप मे ही, विभिन्न क्षेत्रों मे इन्सान की कामयाबियों के बारे मे लिखने की कोशिश करूँगा। इनसे हम भविष्य की ओर जाने की प्रेरणा प्राप्त कर सकते है। हमारे देश मे आज इसकी बडी जरूरत है कि हम और खास तौर पर हमारे बच्चे उन महान चीजों के बारे मे जानें जिन्हें इन्सान ने पूरा किया

है। हमें तो अभी वे चीजें बनाने के लिए भी काफी लम्बा रास्ता तय करना है जो दूसरे देश स्वयं अपने या दूसरों के लाभ के लिए बना चुके हैं। दूसरों ने अपने दिल, दिमाग, आत्मा और शरीर को शिक्षित न कर और इतनी चीजें बनाकर, जिनका पूरा उपयोग भी वे नहीं कर सकते थे, जो गलतियाँ कीं, इस मौके पर हम उनसे भी बच सकते हैं। थोड़ा-सा सोच-विचार करने से इस खतरे से बचा जा सकता है।

क्योंकि तुम्हीं ने मुझे यह छोटी-सी पुस्तक लिखने को कहा था, इसे अपने को ही समर्पित करने दो। कई बातों मे तुम बिलकुल बच्चों की तरह हो, क्योंकि तुम किसी भी चीज़ के जवाब मे 'ना' स्वीकार नहीं करते। और मुझसे कहा जाता है मैं भी बहुत-कुछ बच्चा ही हूँ, क्योंकि मेरी उत्सुकता कभी शान्त नहीं हो पाती। शायद इन कारणों से यह पुस्तक हमारे अतिरिक्त अन्य बच्चों को भी पसन्द आए, जिनमें मैं हमेशा नौ से नब्बे वर्ष तक के प्रत्येक व्यक्ति को गिनता हूँ।

तुम्हारा,
मुल्कराज आनन्द

वह चट्टानों पर रेखाएँ खींच सकता है और कागज पर रेखाएँ, जो गाती हुई मालूम होती हैं। वह उन तस्वीरों मे ऐसे रग भर सकता है कि दूसरे इन्सानों की आत्मा उन पर नजर पडते ही फड़क उठे। वह पशु-पक्षियों, पेडो और पानी की गतिविधि को पकड सकता है और अपने शरीर के हाव-भाव द्वारा उन्हें सौन्दर्य से परिपूर्ण मादक नृत्यों मे प्रकट कर सकता है। वह अपने और दूसरों के विचारो व भावनाओं पर काबू पा सकता है और उन्हें दिल व आत्मा के भावुक चित्रों के रूप मे पूरी नजाकत के साथ कागज पर लिपिबद्ध कर सकता है। वह खुद अपनी मेहनत कम करने के लिए और हवा मे उडने के लिए मशीनें बना सकता है। वह रेडियो पर बोल सकता है ताकि उसकी आवाज हजारों मील दूर भी सुनाई पडे। वह परदे पर परछाइयों को बुला, चला और गवा सकता है—इस खूब-सूरती के साथ जैसे वे आदमी और औरते ही हों। वह पृथ्वी की सारी शक्ति को आणविक ढेर मे समो सकता है और आज यदि वह चाहे तो उस शक्ति का उपयोग इस प्रकार कर सकता है कि सारी दुनिया मे कुछ ही वर्षों मे लहलहाती फसले पैदा हो जायँ और इस तरह दुनिया को गरीबी और बीमारी के चगुल से निकाला जा सके। यदि वह करना चाहे तो कुछ भी कर सकता है। इसी आश्चर्यजनक शक्ति से, जो उसने आणविक समूह में एकत्र कर रखी है, यदि इसे वह अणुबम के रूप मे इस्तेमाल करे तो वह अपने-आपको नेस्तोनाबूद भी कर सकता है।

मै, सक्षेप मे ही, विभिन्न क्षेत्रों मे इन्सान की कामयाबियों के बारे मे लिखने की कोशिश करूँगा। इनसे हम भविष्य की ओर जाने की प्रेरणा प्राप्त कर सकते है। हमारे देश मे आज इसकी बडी जरूरत है कि हम और खास तौर पर हमारे बच्चे उन महान चीजों के बारे मे जानें जिन्हें इन्सान ने पूरा किया

है। हमें तो अभी वे चीजें बनाने के लिए भी काफी लम्बा रास्ता तय करना है जो दूसरे देश स्वयं अपने या दूसरों के लाभ के लिए बना चुके हैं। दूसरों ने अपने दिल, दिमाग, आत्मा और शरीर को शिक्षित न कर और इतनी चीजे बनाकर, जिनका पूरा उपयोग भी वे नहीं कर सकते थे, जो गलतियाँ कीं, इस मौके पर हम उनसे भी बच सकते हैं। थोडा-सा सोच-विचार करने से इस खतरे से बचा जा सकता है।

क्योंकि तुम्हीं ने मुझे यह छोटी-सी पुस्तक लिखने को कहा था, इसे अपने को ही समर्पित करने दो। कई बातों में तुम बिलकुल बच्चों की तरह हो, क्योंकि तुम किसी भी चीज के जवाब में 'ना' स्वीकार नहीं करते। और मुझसे कहा जाता है मैं भी बहुत-कुछ बच्चा ही हूँ, क्योंकि मेरी उत्सुकता कभी शान्त नहीं हो पाती। शायद इन कारणों से यह पुस्तक हमारे अतिरिक्त अन्य बच्चों को भी पसन्द आए, जिनमें मैं हमेशा नौ से नव्वे वर्ष तक के प्रत्येक व्यक्ति को गिनता हूँ।

तुम्हारा,

मुल्कराज आनन्द

सूची

पहला अध्याय

सृष्टि का आरम्भ

[१]

कहते हैं कि एक ऐसा भी जमाना था जब कहीं कुछ नहीं था, या 'कुछ' था जिसके बारे मे हम कुछ नहीं जानते।

इसे कौन जानता है ? कौन इसके बारे में कुछ बता सकता है ? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई ? कौन जानता है यह कहाँ से उपजी है ? यह सृष्टि कहाँ से आई ? ऋग्वेद के कवि ने सृष्टि-स्तोत्र में यही प्रश्न पूछे थे।

और जब वह इस पहेली को हल करने मे असमर्थ रहा तो उसने सृष्टि के आरम्भिक रचना-क्रम के बारे मे अनुमान लगाने की कोशिश की।

उसने सोचा कि न तो वह स्थिति ऐसी थी जिसमे किसी चीज़ का अस्तित्व ही न रहा हो, और न किसी चीज़ का अस्तित्व ही था। न तो वायु थी, और न उसके परे का आकाश। यह गति-चक्र कैसा और क्या था ? और कहाँ था ? कौन इसे प्रेरित कर रहा था ? क्या वहाँ जल और अथाह खाइयाँ थीं ?

आज भी हमें उस अतीतकालीन ऋषि से अधिक कुछ मालूम नहीं है।

अब भी हमारे मस्तिष्क में सिर्फ सवाल उठ सकते हैं और जवाब के लिए अटकलबाजी ही हमारे काम आ सकती है।

चूँकि अब विज्ञान हमारा सहायक है, इसलिए हम आज शायद कुछ अधिक सही अनुमान लगा सकते हैं।

किन्तु हमारा सारा ज्ञान उसी समय से आरम्भ होता है जब इन्सान पृथ्वी पर आया और उसने सोचना शुरू किया। इन्सान के आने के पहले कुछ भी मालूम नहीं था, क्योंकि चीज़ों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने वाला कोई था ही नहीं।

इन सबके बावजूद आइए हम अनुमान लगाएँ कि सृष्टि के आरम्भ मे आखिर था क्या। याद रखिएगा—पृथ्वी ठोम है, इस तथ्य को छोडकर हम जो भी अनुमान लगाएँ सब एक जैसे ही होंगे।

ऋग्वेद के साहसी ऋषि ने कहा है—आरम्भ मे अन्धकार अन्धकार से ही घिरा हुआ था। सृष्टि धुँधली और तरल रूप में थी। यह शून्य समय पाकर आप ही भर गया। तब गरमी की शक्ति से कुछ पैदा हुआ

[२]

उसी तरह, हम अन्दाज़ लगाते है कि जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, वह कभी प्रज्वलित आग का बडा-सा गोला था। यह कइयो मे से एक ग्रह असीमित शून्य मे टिका था। किंवदंतियों मे कहा गया है कि यह गोला सूर्य का ही एक भाग था जो सूर्य के किसी दूसरे ग्रह से टकरा जाने के फलस्वरूप टूटकर अलग हो गया था। और बहुत समय तक जलता रहा था।

और तब, करोडों वर्षों मे उसकी सतह पर की आग जलकर समाप्त हो गई और

उसकी सतह् कडी चट्टानों की परत से ढक गई।

इन चट्टानों पर मूसलाधार बारिश हुई और उन पर की राख और धूल बहाकर तपती हुई धुएँ से भरी पृथ्वी के बड़े-बड़े पहाड़ों के बीच की घाटियों में ले गई। अन्त मे धुएँ और कुहरे मे से होकर सूर्य की गरमी आई और हमारे इस छोटे ग्रह की सतह् को बदलने लगी।

[३]

इन अरबों-खरबों वर्षों मे कभी क्षण-मात्र मे एक आश्चर्य-जनक घटना घटी। उस निर्जीव पदार्थ से सम्भवत गरमी के

प्रभाव से, एक जीवित कोष का जन्म हुआ जो शायद उन ऊँची चोटियों के बीच पानी पर तैरता रहा।

हमे नहीं मालूम कितने करोडों वर्षों तक यह जीव-कोष और उसकी तरह के कई और कोष अथाह समुद्रों के पानी मे तैरते रहे, लेकिन मालूम होता है कि यह कण झीलों के धरातल या समुद्री कछारों पर ही कहीं पडा हुआ जीता रहा, जहाँ यह बढकर पौधों के रूप मे प्रस्फुटित हुआ।

बाद मे इस जीवित कण के पैर निकल आए, जिनके सहारे यह समुद्रों के कीचड मे रेंगता रहा और जेली फिश[1] बन गया। कुछ अन्य कोषों के पर निकल आए। वे पानी मे तैरने लगे। और वे ही बढकर मछलियाँ बन गए।

जो जीव-कोष पौधे बन गए थे वे सभी समुद्र के धरातल पर न रह सके और उठकर कछारों मे आ गए या पहाडों की घाटियों मे पडे कीचड मे बढते रहे।

उनकी संख्या बढती रही और वे बढकर झाडियाँ व पेड बन गए। उनमे सुन्दर फूल निकल आए, और तब जो जीव-कण कीड़े-मकोडे या पक्षी बन गए थे, उन पर चोंच मारने लगे। इस प्रकार पेडों के बीज धरती के दूसरे हिस्सों मे पहुँचने लगे और इसी तरह करोडों पेड-पौधों और उनसे भी अधिक झाड-झाडियों की उत्पत्ति हुई।

इनमे से कुछ मछलियाँ पानी छोडकर हवा मे साँस लेने लगीं। इसके लिए गलफडों के साथ ही उनके फेफडे निकल आए। इन जीवों को जल स्थलचर कहते है, क्योंकि ये पानी मे और धरती पर दोनों जगह रह सकते हैं। हमारा यह टर्राने वाला दोस्त मेंढक इसी प्रकार का एक जल-स्थलचर जीव है।

---

१ निराकार, वर्णहीन और रेंगता हुआ समुद्री पशु।

लेकिन इसके अलावा कई और भी हैं, जिनमें से कुछ ने धरती पर अधिकाधिक और पानी में कम-से-कम रहना सीखा। ये उरगम थे, जो घास और मुलायम मिट्टी पर रेंगते रहे और उन्होंने पैर और बड़े-बड़े शरीर बढ़ा लिये। उनमें से कुछ, जिनके अंग्रेजी में बड़े-बड़े नाम हैं, 'इंक्थ्यो सॉरस', 'मेगलो-सॉरस' और 'ब्रोण्टोसॉरस', तीस से चालीस फुट तक लम्बे हो गए, यानी हाथी या ऊँट से भी छः गुना बड़े।

बाकी उरगम जीवों को, जो पेड़ों पर रहते थे, चलने के लिए पैरों की ही आवश्यकता नहीं हुई, बल्कि एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाने के लिए पंखों की ज़रूरत भी पड़ी। अतः उनके चमड़े का कुछ भाग इस रूप में परिवर्तित हो गया, जो बाद में परों में बदल गए। उनकी पूँछ इधर-उधर घुमा लेने के लिए पतवार-सी बन गई। आज हम जो पक्षी देखते हैं, वे ही उनके आदि-वंशज थे।

इस विकास-क्रम में एक स्थान पर शायद जलवायु में कोई [illegible] हुआ था [illegible] घटना भी [illegible]

और अब पृथ्वी पर एक नये प्रकार के उरगम जीव रहने लगे। चूॅकि ये माॅ के स्तनों से दूध पीते है, इसलिए इन्हें स्तनपायी जीव कहते है।

उनके मछलियों जैसे पर न थे और न ही पक्षियों जैसे पख। उनके शरीर पर बाल थे। आगे चलकर उनमे बडी अच्छी आदतें पैदा हो गई, जिनके फलस्वरूप उन्हें जीवित रहने और अन्य जानवरों से ज्यादा अच्छे बनने मे मदद मिली। उदाहरणार्थ, अन्य जानवरों के विपरीत, जिनके छोटे-छोटे बच्चो को ठण्ड, गरमी और जंगली जानवरों का सामना करना पडता था, मादा स्तनपायी अपने बच्चे के अण्डे अपने शरीर मे ही रखती थी। इस प्रकार इनके बच्चों के लिए जीवित रहना अधिक सुगम हो गया और अपनी माताओं से ये अधिक चीजें सीख सके।

अधिकाश जानवर, जो हम अपने चारों ओर या चिडिया-घर मे देखते है, स्तनपायी ही है।

इन स्तनपायी जानवरो मे से एक सबसे श्रेष्ठ निकला और बढकर इन्सान के रूप में बदल गया। अपना शिकार थामने के लिए उसने अपने अगले पैरों का इस्तेमाल करना सीखा। शिकार आदि के अभ्यास के कारण उसके अगले पैर हाथ बन गए। और साथ ही, कई कठिनाइयों के बाद शायद उसने पिछले पैरों पर खडा होना भी सीख लिया।

यह जानवर, जो शायद 'बन्दर या लगूर' की तरह का, लेकिन दोनों से बेहतर रहा होगा, उनसे ज्यादा अच्छी तरह शिकार कर सकता था और किसी भी जलवायु मे रह सकता था। दुश्मनों से ज्यादा आसानी से बचने के लिए यह बाकी स्तनपायी जीवो के साथ ही घूमता-फिरता रहा और चीखकर सम्भावित खतरों

से अपने बच्चों को सचेत करता रहा। उसकी चीख बाद में हमारी बातचीत में परिवर्तित हो गई।

यह छोटा, भोंडा-सा जन्तु, इन्सान-सा हमारा पहला पूर्वज था।

दूसरा अध्याय

हमारे पूर्वज और हम

[१]

यदि आप सोचने की कोशिश करें कि आप अपने दादा या परदादा, या परदादा के दादा के बारे में कितना जानते हैं तो आपको मालूम होगा कि अपने इन पूर्वजों के बारे में बहुत ही कम या शायद कुछ भी नहीं मालूम है। इसी से आप सोच सकते

हैं कि हमें अपने परदादा के परदादा के परदादा के परदादा के परदादा के परदादा के परदादा के परदादा और उनके पूर्वजों से भी पहले खुरखुरे-से इन्सान तक के बारे में, जो करोड़ों साल पहले रहता होगा, कुछ भी जानना कितना कठिन है।

लेकिन हमारे कुछ बुद्धिमान् व्यक्ति विश्व के विभिन्न भागों में खुदाई करने से मिली खोपड़ियों और दूसरे अवशेषों को देखकर इन आदि-पूर्वजों के बारे में मालूम करने की कोशिश करते रहे हैं।

यूरोप के एक मनीषी होरेस ने कहा था कि जब हम घूमते-फिरते और यात्रा आदि पर जाते हैं तो हमारे विचार जलवायु के साथ-ही-साथ बदलते रहते हैं। इसी तरह जब हम भूतकाल की यात्रा करते हैं तो हमें मालूम होता है कि जलवायु के कारण इन्सान की जिन्दगी में बड़े रद्दोबदल हुए हैं।

यदि हम दसेक लाख साल पीछे जायें, जब से कहा जा सकता है कि स्तनपायी जीव इन्सान की कहानी शुरू हुई, तो हमें चार विभिन्न हिम-युगों की बात मालूम होगी जिनमें से हरेक के बीच हजारों वर्षों की गरमी का अन्तर था। ये हिम-युग शायद पृथ्वी पर सूर्य की गरमी कम हो जाने के फलस्वरूप उत्पन्न हुए। इनके बीच के गरम युग शायद कथित सूर्य-रश्मियों के विकीरण के कारण आरम्भ हुए। लेकिन ईसा के लगभग ६८ हजार साल पहले एक कड़ी सरदी की लहर आई। उसके बाद ईसा से लगभग ३००० साल पहले जलवायु पुन बदल गई। उसके बाद शीत और ताप के महत्त्वपूर्ण आकस्मिक परिवर्तन नहीं हुए और जलवायु लगभग उसी तरह की बन गई जैसी आज है।

वह खुरखुरा-सा पहला स्तनपायी, जिसे हमने अपना पूर्वज कहा है, इस नाम से इसीलिए पुकारा जाता है क्योंकि वह चीख चिल्ला सकता था, बोल सकता था और औज़ार आदि बना लेता था।

अब यह करीब-करीब निश्चित हो गया है कि हमारा पहला पूर्वज अन्य स्तनपायी जानवरों से मिलता-जुलता ही था, जैसे बन्दर, गुरिल्ले, चिम्पैंजी, औरंगऊटॉग और गिब्बन[1], जिनमे से सभी को आप चिडियाघर मे देख सकते है। लेकिन सम्बन्धी होते हुए भी आदमी और बन्दर मे दूर का ही रिश्ता है।

हम कल्पना कर सकते है कि हमारा पूर्वज बन्दर से ज्यादा आदमी की तरह रहा होगा। देखने मे वह बिलकुल 'बन्दर' ही

---

१ उपर्युक्त सभी नाम विभिन्न जातियो के बन्दरो के है।

की तरह था। लेकिन जहाँ बन्दर एक पेड से दूसरे पेड पर कूदते थे, यह बालों से भरे हुए शरीर वाला छोटा-सा आदमी पृथ्वी पर घूमने और भोजन की तलाश करने लगा।

इस रहस्यमय जन्तु की शक्ल-सूरत, कद और बनावट वगैरह के बारे में दुनिया के विभिन्न भागों में कई संकेत मिले हैं। उदाहरणार्थ, उत्तर-पश्चिमी भारत की शिवालिक पहाड़ियों, केनिया, पूर्वी और दक्षिणी अफ्रीका, पेकिंग और जावा मे खोपड़ियाँ मिली हैं जो ऐसी लगती हैं जैसे वे बन्दर और इन्सान के सामान्य पूर्वज की खोपड़ियाँ हों।

[२]

खोपडी और हड्डियाँ देखकर हम भला यह कैसे बता सकते हैं कि वे बन्दर की खोपड़ियाँ हैं या इन्सान की ?

इसका जवाब यही है, जैसा कि प्रोफेसर गॉर्डन चाइल्ड ने कहा था कि '*इन्सान अपने-आपको खुद बनाता है।*' वह अपने हाथों और दिमाग का उपयोग करता है।

और जो व्यक्ति हमारा पूर्वज था, अन्य जानवरों से विभिन्न तभी हुआ जब उसने जगली जानवरों और अपने दुश्मनों को मारने के लिए, या लकडियाँ फाडने के लिए कुल्हाड़ियाँ और शल्कलों जैसे औज़ार बनाने शुरू किये।

मालूम होता है कि शल्कलों का इस्तेमाल करने वाले तो 'प्राचीन' लोग थे और हाथ की कुल्हाड़ियों का इस्तेमाल करने वाले 'आधुनिक'।

पहले वाले कदीम इन्सान का बड़ा-सा निचला जबडा था, जिससे जाहिर

है कि वह कच्चा मास खाता होगा। प्राचीनतम फ्रासीसी की खोपडी मे, जो फॉण्टेशावडे नामक गुफा मे मिली है, उस 'आधुनिक' श्रेणी के इन्सान का जवडा विलकुल साधारण मालूम होता है, जैसे आपका या मेरा या पण्डित जवाहरलाल नेहरू का—और उसमे दाँत भी साधारण ही है।

यह सोचकर हमारा तो सिर चकरा जाता है कि यह 'आधुनिक' इन्सान भी हजारों साल पहले रहता था। इससे इन्सान किस तरह बढा, इसे स्थूल रूप से समझने के लिए विद्वानों ने हमारे पूर्वज जिन हथियारों का उपयोग करते थे उनके अनुरूप ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक युगों को बाँट दिया है।

[३]

उन दीर्घकालीन हिम-युगों मे इन्सान प्रकृति के विरुद्ध किसी तरह जीने और भोजन पाने के लिए अपने हाथ-पैरो का उपयोग करना सीख रहा था। इसी से इन्सान की जिन्दगी के विभिन्न पहलुओं का वर्णन इस आधार पर किया गया है कि उसने कैसे-कैसे अपनी जिन्दगी गुजारने के लिए नये-नये तरीके निकाले।

यह कहानी पाँच लाख वर्ष या ढाई हजार वर्ष पहले शुरू होती है। इस स्थिति मे इन्सान एक अद्भुत जानवर और भोजन इकट्ठा करने वाले के रूप मे अवतीर्ण होता है। वह दूसरे जानवरो का शिकार करता था और भोजनार्थ प्रकृति उसे जो भी दे सकती थी, एकत्र करता था। इन्सान अपनी जिन्दगी के सबसे शुरू मे और सबसे लम्बी अवधि तक केवल भोजन इकट्ठा करता रहा। प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने वाले पुरातत्त्ववेत्ताओं ने पृथ्वी पर इन्सान की ८६ प्रतिशत जिन्दगी को प्राचीन पाषाण-युग का नाम दिया है। मानव शास्त्री, जो मनुष्य का अध्ययन उसे जीव-समाज का अग मानकर करते है, इस स्थिति को 'जगलीपन' का नाम देते है। और भूगर्भ-शास्त्री, जो पृथ्वी की भौतिक स्थिति का

अध्ययन करते है, इसे प्रातिन-नूतन युग कहते हैं। जैसा कि सभी जानते है, इस प्रकार भोजन एकत्र करने की आदत अफ्रीका, मलाया और उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया एव शीत कटिवन्धों की कुछ पिछडी हुई जातियों के निवासियों मे अभी भी प्रचलित है।

लगभग दस हजार वर्ष पहले, कुछ लोग सबसे पहले मध्य-पूर्व मे, पेड़ों से मिलने वाले फलों के साथ ही भोजन के लिए कुछ अनाज के पौधे बोने और पालतू जानवर पालने लगे। पुरातत्त्व-वेत्ता इसे अर्वाचीन पाषाण-युग कहते हैं। मानव-शास्त्री इसे खाद्यान्न पैदा करने की स्थिति या वहशीपन का युग कहते है। असल में अर्वाचीन पाषाण-युग का अर्थ कुछ विस्तृत रूप मे लेना चाहिए, क्योंकि आज भी कई जातियाँ उसी युग के पत्थर के औजारों का प्रयोग करती हैं, यद्यपि उन्होंने लोहे और कासे के और वाद के युग के औजारों का प्रयोग करना भी सीख लिया है।

अगली स्थिति, जिसमे इन्सान इन्सान वना, लगभग पाच हजार साल पहले नील नदी, दजला और फरात तथा सिन्धु की घाटियों में शुरू हुई। यहाँ कुछ गाँवों में, जो वढ़कर शहर वन गए, समाज ने किसानों को स्वय उन्हें अपने लिए जितने खाद्यान्न की जरूरत थी, उससे अधिक उपजाने को वाध्य किया। यह अतिरिक्त पैदावार उन्हें दी जाती थी जो खुद खेती नहीं करते थे, जैसे कुम्हार और जुलाहे, पुरोहित और व्यापारी तथा अफसर। अव इन्सान अपने विचार लिपिवद्ध भी करने लगा, सुन्दर-सुन्दर घर वनाने लगा और सचेत हो रहने लगा। इसी काल को *सभ्यता* कहते हैं।

इस युग को, जिसे सभ्यता कहते हैं, पॉच भागों मे वॉटा जा सकता है।

(क) इस युग के पहले दो हजार वर्षों को ताम्र-युग कहते हैं, क्योंकि इस जमाने मे इन्सान पीतल और तांवे के औजारों तथा
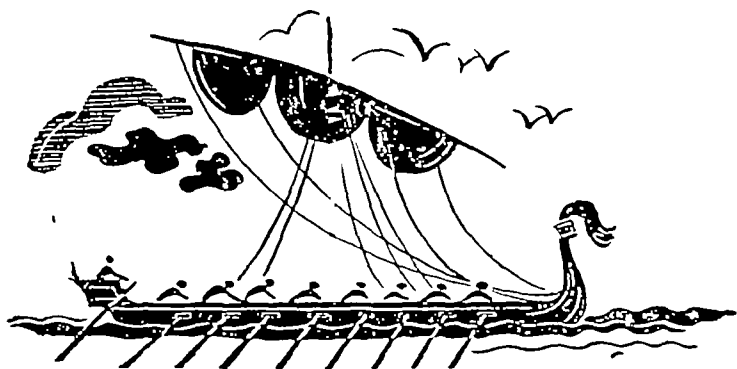
हथियारों का उपयोग करने लगा था। लेकिन ये धातुएँ मँहगी थीं, इसलिए इनका उपयोग केवल राजा, बडे अफसर, पुरोहित और दूसरे बडे आदमी ही करते थे, जो समाज के सबसे धनी लोग थे। भारत, मिस्र, चीन और दूसरे देशों ने तांबे और पीतल के युगों की उन्नति करने मे बडी मदद की।

(ख) आरम्भिक लौह-युग ईसा के लगभग बारह सौ वर्ष पहले शुरू हुआ। इसी समय कांति लोहा बनाने का बेहतर तरीका मालूम हुआ। मध्य-पूर्व मे वर्णमाला के आविष्कार के कारण लिखने वगैरह का, जो अब तक पुरोहितों के हाथ मे एक रहस्य-मय आश्चर्य बना था, आम प्रचलन हो गया। ईसा के लगभग सात सौ वर्ष पहले चीजे खरीदने और बेचने के लिए सिक्कों का प्रयोग होने लगा। भारतीय, यूनानी और रोमन सभ्यताओ मे एक जगह से दूसरी जगह को व्यापार का सामान लाने-ले जाने के लिए नावों और जहाजों का उपयोग होने लगा, जिन्हे गुलाम खेते थे। बहुत से धनी व्यापारी और किसान भी पैदा हुए। जनसख्या भी बढी, खासतौर पर भूमध्य सागर के आस-पास। लेकिन जनसख्या मे वृद्धि गुलामो की दरिद्रता के कारण, जो

खेतों मे काम करके और चीजें बनाकर वास्तव में यह धन पैदा करते थे, नियन्त्रित ही रही।

(ग) बाद मे, भारत मे कुछ ग्रामीण प्रजातन्त्रों का जन्म हुआ। यूरोप मे बजारे किसानों को सामन्तों और सरदारों की भूमि पर नौकरी मिल गई। ये किसान यूनान या रोम की भाँति अब गुलाम न थे, बल्कि उनकी भूमि पर खेती करने वाले माल-गुजार थे। दस्तकारों ने अपने सघ बना लिए, जिन्हें 'गिल्ड' कहते थे। नहरों से सींची जाने वाली उपजाऊ भूमि से पैदा होने वाले खाद्यान्न के फलस्वरूप व्यापार व उद्योग भी खूब बढा। यूरोप की जनसख्या तेजी से बढने लगी।

(घ) पश्चिम की उन्नति होने के साथ-ही-साथ साहसी पुरुष समुद्रों मे निकले और उन्होंने भारत, अमरीका व सुदूरपूर्व के रास्ते खोज निकाले। ये सभी देश यूरोप मे पैदा होने वाली चीजों के बाजार बन गए और अटलाटिक देश मशीनों से बडी सख्या मे तैयार होने वाली चीजों के बदले विश्व के सभी भागों से खाद्यान्न का आयात करने लगे। जैसा कि १७५० और १८०० के बीच इगलैण्ड की जनसख्या मे वृद्धि के आँकडों से मालूम होता है, ये नये प्रयास बूर्जुआ (पूँजीवादी) समाज मे अत्यन्त सफल हुए।

(ङ) यूरोप की औद्योगिक क्राति शीघ्र ही सारी दुनिया मे फैल गई और लगभग दो सौ साल पहले, जब अँग्रेजों ने भारत जीता तो हम भी इस प्रगति का अग बन गए।

अब हम स्वतन्त्र हैं। लेकिन हमे अभी बहुत सी चीजे सीखनी हैं जिनसे हम अपने सामने आने वाले अवसरों का पूरा लाभ उठा सकें, अपने देशवासियों को अधिकाधिक खुशहाल कर सकें और एक नई एवं अधिक सुन्दर सस्कृति का निर्माण कर सकें।

रहना पड़ता होगा। चकमक पत्थर का यह भद्दा-सा हथियार शिकार को मारने के लिए काफी अच्छा था। लेकिन जल्द ही कन्दराओं में रहने वाले उस इन्सान को महसूस हुआ कि जिन जानवरों का वह शिकार करता है, उनका गोश्त काटने के लिए उसे कुल्हाड़ी की आवश्यकता है। अतः उसने पत्थर के टुकड़ों को और बारीक तराशना शुरू किया और कुल्हाड़ियाँ बनाईं। बहुत से ऐसे ही भोंडे हथियार समुद्री घोंघों के ढेरों मे पाये गए हैं। मालूम होता है कि इन्हीं हथियारों का उपयोग वह कछुए और मछलियाँ व दूसरे समुद्री जानवर मारने के लिए भी करता था।

[३]

ऐसा लगता है कि पाषाण-युग के उस इन्सान को एकाएक ही मालूम हो गया कि कच्चे मांस का स्वाद उसे आग मे भूनने के बाद बढ़ जाता है। किंवदन्ती है कि सूअर का एक बच्चा एक दिन जलती हुई आग मे गिर पड़ा। जब किसी ने उसे निकाला तो उसकी सुगन्ध से उसके मुँह मे पानी भर आया और वह उसे चबाने लगा। इस पर कन्दराओं के दूसरे निवासी भी इस आग मे भुने हुए सूअर के बच्चे का मांस पाने के लिए छीना-झपटी करने लगे। इस तरह एक नये स्वादिष्ट भोजन का आविष्कार हुआ। आग के आविष्कार की चर्चा हम अगले अध्याय मे करेंगे। लेकिन यहाँ इतना अवश्य ही कह देना चाहिए कि आदिकालीन इन्सान के लिए जीवन-निर्वाह के संघर्ष के लिए उठाया गया यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम था।

नये पाषाण-युग के लोगों को जल्दी ही मालूम हो गया कि बादाम जैसे मेवे व बीज वगैरह इकट्ठा करने के बहुत दिनो बाद तक रखे जा सकते हैं। यह दूसरा लाभदायक आविष्कार था। अतः जाड़े मे इस्तेमाल के लिए, जबकि न तो फल ही मिलते थे और न ही शिकार के लिए जानवर, वे भोजन संग्रह करके रखने लगे।

लेकिन इससे भी बडी खोज, पाषाण युग की क्रान्ति, उस समय हुई जब इन्सान को मालूम हुआ कि जमीन में गाडे गए बीज नये पौधों के रूप में उग आते हैं। उन दिनों के रिवाज के अनुसार कुछ बीज मुर्दों के शरीर के पास ही गाडे जाते थे और उनसे नये पौधे निकल आते थे। इस तरह इन्सान भोजन संग्रह करने और भोजन एकत्र करने की स्थिति से बढकर भोजन उत्पन्न करने की स्थिति पर आ पहुँचा।

हमें याद रखना चाहिए कि ये सभी आविष्कार हजारों साल के कडे परिश्रम के फल थे। क्योंकि परिश्रम ही संस्कृति है, भोजन का उत्पादन या कृषि विश्व की पहली संस्कृति थी। क्योंकि खाद्यान्न पैदा करने में समर्थ होते ही इन्सान को आराम की दूसरी चीजों की जरूरत पडी और वह वे चीजें बनाने लगा जो सभ्यता की देन समझी जाती हैं। हमारे जंगली पूर्वजों की 'सभ्यता' हमारी सभ्यता की तरह भले ही न रही हो, लेकिन यह एक तरह की 'सभ्यता' तो थी ही।

जब इन्सान को जमीन में बीज बोने की अक्ल आ गई, जो पौधों के रूप में उग आते थे, तो स्वभावत उसने भोजन इकट्ठा करने और जानवरों का शिकार करने के लिए इधर-उधर भटकते रहने के बदले एक ही जगह रहने का विचार किया। इस तरह अन्न उपजाने वाले एक ही जगह झोंपडियाँ बनाकर रहने लगे और उन्होंने जानवर पालने शुरू किये, जो दूध देते थे। असल

मे उनके लिए गॉव मे ही रहना सम्भव था, जहॉ जगली जानवर और दूसरे दुश्मन उन पर हमला न करे। फिर उन्होने देखा कि एक जगह दूसरी जगह से बेहतर होती है और दस हजार साल पहले उसे महसूस हुआ कि विश्व मे सबसे सुरक्षित और उपजाऊ स्थान पॉच बडी नदियो—नील, दजला, फरात, हागहो और सिध—की घाटियॉ है।

[४]

विश्व के इन भागों की जलवायु गरम और गीली थी, जबकि यूरोप का अधिकाश भाग बरफ से ढका रहता था। इन्सान ने जब यहॉ अन्न उपजाना शुरू किया, उस समय फ्रास के कन्दराओ मे रहने वाले लोग बारहसिगो और जगली घोडो का शिकार ही कर रहे थे। पानी की बहुतायत एव अत्यन्त उपजाऊ मिट्टी के

साथ-ही-साथ ये क्षेत्र आक्रमणकारियों से भी सुरक्षित थे अत सैकड़ों वर्ष तक इन्सान यहाँ खेती करता रहा और नई-नई बातें सीखता रहा ।

उदाहरण के लिए नील नदी की घाटी मे रहने वाले लोगों ने देखा कि नदियों मे बाढ़ और वर्षा के बाद जमीन कितनी उपजाऊ हो जाती है तो उन्होंने और विस्तृत और फिर उससे भी विस्तृत और फिर उससे भी विस्तृत क्षेत्रों को पानी पहुँचाने के लिए खाइयाँ खोदनी शुरू कीं । ये खाइयाँ पहली नहरें थीं और खाद्य-उत्पादन की कहानी मे सिंचाई की यह व्यवस्था एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम था ।

कहा जाता है कि जौ पहला अनाज था जिसे इन्सान ने अपने लिए उगाना सीखा । लेकिन पूर्व के कई भागों में गेहूँ भी पैदा किया जाता था। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आज से छः हजार साल पहले मिस्र मे गेहूँ भी उपजाया जाता था ।
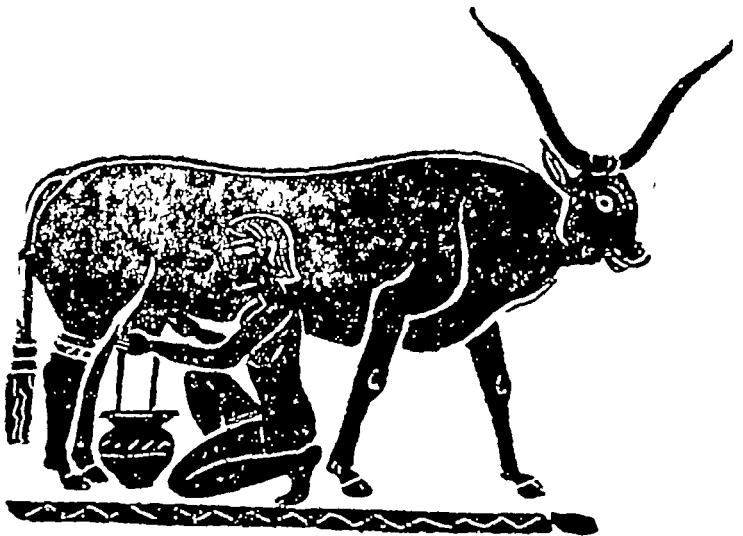
उनके राजाओं की कब्रों मे हल चलाते हुए और अनाज काटते हुए लोगों के साथ-ही-साथ जमीन पर बैठे, चक्की मे अनाज पीसते हुए और लम्बे-लम्बे सींगों वाली गायों का दूध दुहते हुए आदमियों की तस्वीरे भी है।

पत्थर की भोंडी कुल्हाडियो और जमीन खोदने वाले औजारों के बाद फावडा ही पहली चीज था जिसका आविष्कार खेती के लिए हुआ। शुरु-शुरू मे मिस्र मे इस्तेमाल किया जाने वाला फावडा बहुत-कुछ आज के हमारे फावडे की तरह का ही होता था, लेकिन वह लोहे के बदले चकमक पत्थर का बना हुआ था।

लेकिन फावडे से जमीन खोद-खोदकर बीज बोने के लिए क्यारियॉ बनाना, खास तौर पर जब खेत बडे-बडे हो, बडी मेहनत का काम है। अत इन्सान ये क्यारियॉ बनाने के लिए दूसरे तरीके सोचने लगा। उसने पत्थर का बडा-सा टुकडा लिया, उसके

निचले भाग को तेज़ किया और उसे खेत पर घसीटने लगा। जब ज़मीन कडी होती थी तो यह औज़ार काम न देता था। इसलिए इस ज़माने के लोगों ने इस टुकडे में हैण्डल लगाए और एक आदमी इसे पकडकर खींचने लगा और दूसरा नुकीले भाग को जमीन मे दबाकर रखने लगा। यही पहला हल था। और यह मानव-इतिहास के सबसे बडे आविष्कारों मे से है, क्योंकि इन्सान बिना भोजन के जीवित नहीं रह सकता गो कि अन्य कई चीज़ों के बिना वह रह सकता है।

समयानुसार इस हल में सुधार होता गया और लोगों ने फ़सल काटने तथा अनाज कूटने के लिए दूसरे औजार बना लिए, जैसे हँसिये और काँटे। उन्होंने अपने काम में जानवरों की मदद लेनी भी शुरू कर दी। मिस्र में बैल, चीन मे गधे, दजला और फरात की घाटी में ऊँट, सिन्ध की घाटी में बड़े-बड़े बैल और सुमेर मे घोड़े काम में लाए जाने लगे।

ये लोग खासकर मिस्र और भूमध्य सागर के द्वीपों में, भेड

और बकरियाँ पालने लगे। उनका गोश्त वे खाते थे और उनके ऊन से कपडे बनाते थे। जो खाद्यान्न बच जाते थे उन्हे ये लोग दूसरे देशों को भेज देते थे। इस तरह हम देखते कि खेती-बारी की बदौलत ही व्यापार और वाणिज्य, चीजो को नापने और तोलने के लिए बाट-बटखडे, लिखकर सदेश भेजने के लिए अक्षर और अंक, मकान व महल एव मन्दिर, कपडे व जेवर तथा पत्थर, लकडी, कासे और लोहे के बरतन आदि का निर्माण हुआ। मोहेनजोदडो
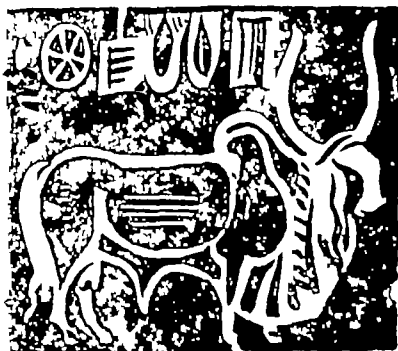
और हडप्पा मे हमे पुराने समृद्धिशाली नगरो के सभी चिह्न मिलते हैं और हमे मालूम होता है कि हमारे भूखण्ड की सभ्यता कितनी उन्नत थी। सिर्फ सिन्ध की घाटी मे ही लोगो ने उन्नति नहीं की, बल्कि चीन के विस्तृत क्षेत्रो मे भी की।

खेती-बारी की उन्नति हर जगह बेहतर औजार बनाने पर निर्भर थी।

शुरू-शुरू मे लोग अनाज की बालियाँ हाथ से तोडते थे, पर इसके शीघ्र बाद ही चकमक पत्थर के बने हुए हँसिये इस्तेमाल होने लगे। इस तरह काटा हुआ अनाज मिट्टी से पुती हुई डलियों मे रखा जाता था और उसके बाद मिट्टी के बने बडे-बडे घडो मे।

इनमे से बहुत सी चीजे तो औरतो ने बनाई होगी, क्योकि आदमी अभी भी शिकार ही करते थे और औरतो को आटे के

के चारों ओर वे खाइयाँ और खन्दक खोद देते थे।

जल्दी ही लोगों ने देखा कि अनाज पैदा करने के लिए मौसमों का ध्यान रखना जरूरी है। पतझड मे, जबकि वर्षा हो चुकती थी, लोग खेत जोतते थे और मिट्टी के ढोकों को लकडी के पटरों से पीट-पीटकर तोडते थे, बीज वो दिया जाता था और उसे मिट्टी मे गाडने के लिए खेतों मे जानवर चलाए जाते थे। अनाज तैयार हो जाने के वाद उसे काटकर साफ करने के लिए खलिहानों मे ले जाते थे। कूटने के वाद औरतें सूप या लकडी के तख्ते से हवा मे अनाज उछाल-उछालकर उससे भूसा अलग करती थीं।

मिस्र मे तीन मौसम होते थे, नील नदी के वहाव के हिसाव से—वाढ का उतार, जाडे की शुरुआत और गरमी। और वहाँ दूसरी जगहों की तरह, महीने की गिनती चाँद के हिसाव से होती थी। महीने मे तीन हफ्ते होते थे और हर हफ्ते मे दस दिन। तीस-तीस दिन के वारह महीनों से एक माल मे ३६० दिन हो जाते थे, जिनमें पाँच दिन छुट्टियों के जोड दिए जाते थे। वाद में साल की गिनती सूर्य के हिसाव से करने का वेहतर तरीका निकाला गया और आज तक सिर्फ थोडे से हेर-फेर के साथ हम यही कैलेण्डर इस्तेमाल करते है।

[५]

मिस्र के निवासियों ने अनाज पैदा करने के तरीकों मे वहुत उन्नति की और वे दिनों-दिन अमीर होते गए। उनमे से जो सवसे अमीर और शक्तिशाली होता था वह उनका राजा वन जाता था, जिसे 'फेअरो' कहते थे। उन लोगों ने मेम्फीस और थीव्स जैसे सुन्दर नगर वसाए।

नील की घाटी के गरीव इतने भाग्यवान नहीं थे जितने कि अमीर। उनमे से वहुत से तो गुलाम थे। लेकिन इन गुलामों की

हालत इतनी बुरी नहीं थी जितनी शिकार करने वाली जातियों की। इन जातियों के लोगों को कभी भी खाना न मिलने के कारण भूखे मर जाने का डर रहता था। मिस्र के कुछ जमींदार तो गरीब किसानों से अच्छा व्यवहार करते थे, जैसे उनमें से एक ने, जो शाहज़ादा था और ईसा के १६०० वर्ष पूर्व हुआ था, लिखा है, "किसी भी मजदूर को मैंने गिरफ्तार नहीं किया है, और न किसी गडरिए को देश-निकाला ही दिया है। किसी भी जमींदार के मज़दूरों को मैंने छीना नहीं। मेरे जमाने में न कोई गरीब था और न ही कोई भूखा। अकाल के दिनों मे मैं उत्तर से दक्षिण तक अपनी सारी ज़मीन जोतता था, लोगों को खाना देता था और जिन्दा रखता था। कोई भी भूखा न था। मैंने सभी निवासियों के लिए भोजन उपलब्ध किया ताकि कोई भूखा न रहे। मैंने सभी स्त्रियों को समान दृष्टि से देखा और दान दिया, चाहे उनके पति जीवित रहे हों या नहीं। और मैंने छोटे-बडे का भेद भी कभी नहीं रखा।"

मिस्र वालों ने तरह-तरह की फसलें उगाकर और भिन्न-भिन्न जानवर पालकर देखा। उन्होंने जौ बोये और उससे 'बियर' शराब बनाना सीखा। उन्होंने अंगूर की बेलें लगाईं

और अंगूर की शराब बनाई, खजूर और अंजीर खाना शुरू किया तथा फलियों व साग की तरकारियाँ बनाईं। उन्होंने बत्तख और हंस पाले और वे भुनी हुई बत्तख बड़े चाव से खाने लगे। उन्होंने पटसन और नरकुल उगाया, जिनसे वे कपड़ा, मोमबत्तियाँ, कागज और बहुत-सी दूसरी चीजें बनाते थे।

इस तरह मिस्र के निवासियों ने बहुत सी कलाओं को जन्म दिया जो हमारी सभ्यता का आधार है। जब उन्होंने औजार बनाने के लिए पत्थर के स्थान पर धातु का इस्तेमाल शुरू किया तो वे इन औजारों से पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े काटने लगे और उनसे खूबसूरत इमारतें बनाने लगे। मिस्र के प्रसिद्ध पिरामिड, जो वास्तव में वहाँ के राजाओं के मकबरे हैं, संसार के सात महान आश्चर्यों में से हैं। इनके बनाने में हजारों आदमियों ने
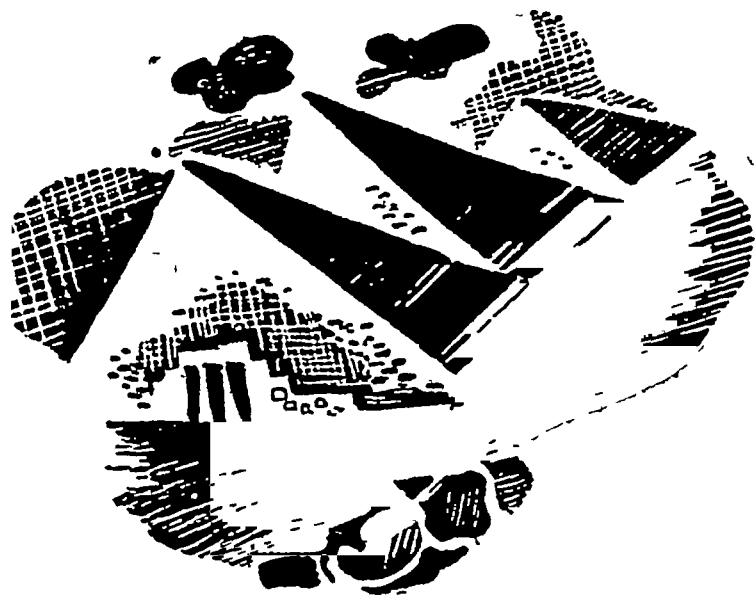
काम किया और उसमें वर्षों लग गए। बड़ा 'पिरामिड' एक लाख आदमियों ने लगभग बीस वर्ष मे तैयार किया था। गुलामों को पत्थर के बड़े-बडे ठोके, जो छोटे-छोटे मकानों तक के बराबर होते थे, रेगिस्तान मे से मीलों ढोकर लाने पडे थे। उसके बाद उन्होंने ढकेल-ढकेलकर और खींचकर पत्थर के इन टुकडों को अपने-अपने स्थान पर जमाया। बडे पिरामिड के पास ही एक बहुत बडी मूर्ति है जिसका सिर आदमी का है और धड शेर का, जिसे 'स्फिक्स' कहते हैं। नील की घाटी के निवासियों द्वारा निर्मित ये और अन्य विशाल मूर्तियाँ व मन्दिर मिस्र की सभ्यता का गौरव हैं। नील की घाटी मे अच्छी फ़सल उत्पन्न करने के लिए लोगों ने देवताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने

के लिए ही मानो ये सब चीजें बनवाई थीं।

[६]

दूसरी प्राचीन जाति के लोग, जिन्होंने बहुमूल्य फ़सलों के आधार पर एक महान् सभ्यता का निर्माण किया, यहूदी थे।

पहले वे बेबीलोन के उत्तर मे दजला और फ़रात नदियों के बीच रहते थे। दोनों नदियों के बीच की भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी। यहाँ भी कुछ प्राचीनतम लोगों ने झाड-झखाड साफ करके चकमक पत्थर के औजारों से ज़मीन खोदना और अन्न उपजाना शुरू किया और फिर वे साथ-साथ गाँवों मे रहने लगे। उन पर राजा शासन करता था, जो कानून भी बनाता था। चार हज़ार साल पहले बनाये गए इन कानूनों की सूची हाल ही में पाई गई है।

ईसा के लगभग दो हज़ार साल पहले अब्राहम नाम का एक व्यक्ति यहूदियों को लेकर नई भूमि की खोज मे निकला। वे मिस्र गये और यहाँ उनमें से एक जोहन्ना बडा राजनीतिज्ञ बन गया। बाद मे मिस्री 'फेअरों' ने यहूदियों को सताना शुरू किया। ईसा के लगभग १३२० वर्ष पूर्व मूसा, यहूदियों को मिस्र के बाहर, लाल सागर के पार, कन्नान प्रदेश मे ले गए। महान् यहूदी राजा डेविड ने ईसा के लगभग एक हज़ार वर्ष पूर्व येरूशलेम को अपनी राजधानी बनाया।

[७]

नील नदी और दजला व फरात के राज्यों के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं। दुनिया का नक्शा बदला और नई जातियों का महत्त्व बढ़ गया। इनमे से सबसे महान् फारस के रहने वाले थे, जिन्होंने बेबीलोन और मिस्र के कुछ भाग को जीत लिया और भारतवर्ष की सीमा तक बढ़ आए।

खाद्य-उत्पादन की कहानी में फारसवासियों की कोई खास देन नहीं है। लेकिन अपने राज्यों मे उन्होंने जो सड़कें बनवाईं उनके फलस्वरूप लोग एक-दूसरे को जानने लगे और पौधे भी एक जगह से दूसरी जगह पहुँचे, जैसे प्याज़ और अनार, जो अफ़गानिस्तान मे पैदा होते थे, पश्चिम तक पहुँच गए और मुर्गियाँ, जो सबसे पहले भारत मे पाली जाती थीं, यूरोप पहुँच गईं।

[८]

चीन की सभ्यता भी उतनी ही पुरानी है जितनी मिस्र की।

लेकिन चीन की जमीन कुछ कड़ी थी और वहाँ खाद्यान्न देर मे पैदा हो पाते थे। ह्वांगहो और पीली नदी मे अक्सर बाढ़ें आती रहती थीं। चीन के दूसरे हिस्सों में अक्सर वर्षा का अभाव रहता था। अपने देश से कहीं दूर बैठे एक चीनी कवि ने ११२१ ई० पू० लिखा था—

आकाश में स्वच्छ बादल छाए हैं
हमारे बीच पहाड़ों की बड़ी-बड़ी दीवारें हैं
मार्ग कठिन और लम्बा है
गहरे गड्ढों ने हमें अलग कर रखा है
मैं तुमसे जीवित रहने की प्रार्थना करता हूँ।

लेकिन चमत्कार का निर्माण करने वाले इन्सान ने इस क्षेत्र मे भी बहुत-बहुत पहले अत्यन्त आश्चर्यजनक चीजें बनाकर खड़ी कर दीं। उसने बाँध, नहरें और तालाब बनाकर नदियों

की बाढ़ों पर नियन्त्रण किया। उसने नदियों के दहानों पर बने डेल्टों से पानी लिया, सूखी भूमि की सिंचाई की और पहाड़ों के ढालों पर समतल खेत बनाकर अनाज पैदा किया।

हजारों साल पहले चीन में एक भूमि-विभाग था तथा निर्माण-विभाग के लिए एक मन्त्री। वह जनता को सलाह देता था कि कौनसी भूमि किस अनाज की फसल के लिए उपयुक्त है, औजारों की देखभाल कैसे करनी चाहिए और खाद कैसे इस्ते-माल करना चाहिए। चीनियों ने गोबर, मछली के टुकड़ों और कूड़े-करकट से खाद तैयार किये। इस तरह उन्होंने अपनी भूमि

को उपजाऊ बनाया और साल में एक ही खेत से दो-तीन फसलें उगानी शुरू कीं। वे चावल तो पैदा करते ही थे, पेड़ भी उप-जाते थे और इनके लिए वे खास तौर पर तैयार किये गए खादों का इस्ते-माल करते थे। जमीन से बड़ी मात्रा में खाद्यान्न मिल जाने के कारण, उन्होंने कलाओं में भी उन्नति की। 'चाप-

रिटकों' से खाना खाने की कला उनके लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण थी जितनी सुन्दर लिखावट, ताँबे की मूर्तियाँ बनाना, हाथी दाँत का काम, चित्रकला, शिल्पकला या शरीफों के तौर-तरीकों की चर्चा।

[६]

स्वय हमारे देश भारतवर्ष मे लोगों ने बहुत पहले धान उपजाना शुरू किया। खाने की खोज मे भटकते हुए खानाबदोश आर्यों के यहाँ आने के बहुत पहले अर्वाचीन प्रस्तर-युग के निवासियों, द्रविड़ों व उनके पहले की जातियों ने सिन्ध नदी की घाटी में खेती करनी शुरू कर दी थी। यदि उपज इतनी अच्छी न होती तो मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा के शहर इतनी सुन्दरता से न बसाये गए होते, न ही उनमें सोने के सुन्दर जेवर, बरतन, मुहरों व खिलौनों की भरमार होती।

सिन्ध घाटी की सभ्यता ईसा से ढाई हजार वर्ष पुरानी थी। पर पता चलता है कि उस समय भी उत्तरी भारत तथा दजला व फरात के देशों मे काफ़ी व्यापार होता था। जलवायु बदलने या व्यापार मे कमी या किसी अन्य दुर्घटना के कारण यह सभ्यता १७०० ई० पू० या १४०० ई० पू० में एकाएक नष्ट हो गई।

हमारे इतिहास का दूसरा दौर लगभग १५०० ई० पू० आर्यों के भारत पर हमला करने से शुरू हुआ। खानाबदोश आर्यों ने द्रविड़ों से, जिन्हें उन्होंने जीत लिया था, अन्न उपजाना सीखा। ये लोग कुशल घुड़सवार थे और मवेशी तथा भेड़-बकरियाँ चराना जानते थे। लेकिन भारत आने के पहले उन्हें खेतीबारी का अधिक ज्ञान नहीं था। वे गाय-बैल और अन्य जानवरों का मास खाते थे। लेकिन बाद मे सिन्ध और गगा की घाटियों मे पैदा होने वाले अन्न की वे सबसे ज्यादा कदर करने लगे।

इन उपजाऊ क्षेत्रों के आसपास आर्यों ने छोटे-छोटे गाँवों की

नई दुनिया बसाई, जहाँ उनकी प्रत्येक आवश्यकता पूरी हो जाती थी। यहाँ किसान गेहूँ, जौ या मक्का बोते थे। कुम्हार उनके लिए मिट्टी के बरतन बनाते थे, लुहार उनके जानवरों के पैरों मे नाल जडते थे, जुलाहे उनके लिए कपडा बुनते थे, अध्यापक उनके बच्चों को पढाते थे और पुरोहित अच्छी फसल के लिए देवताओं से प्रार्थना करते थे। किसान इसके बदले उन्हे खाना देते थे। छोटे-छोटे गाँवों के इन स्वावलम्बी प्रजातन्त्रों मे भूमि किसी एक की सम्पत्ति न थी, राजा की भी नहीं। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार था कि अपनी और अपने परिवार की आवश्यकता के अनुसार वह जितनी भूमि पर चाहे खेती कर ले। चरागाह भी सभी की सम्पत्ति थे और सभी उनमे अपने मवेशी चरा सकते थे। राजा या मुखिया को अधिकार था कि अपने आदमी भेजकर कर या लगान के रूप में चीजें मँगवा ले। इस मालगुजारी के बदले वह सडकों की देखभाल करवाता तथा गाँव की रक्षा के लिए सेना रखता था।

हमारे पुराने गाँव की यह सुव्यवस्थित जीवन-व्यवस्था लगभग अठारहवीं शताब्दी तक चलती रही, जब अंग्रेजों ने भारत पर अधिकार करना शुरू किया। इन छोटे-छोटे ग्रामीण प्रजातन्त्रों की मुख्य विशेषता यह थी कि राजा बदलते रहने पर भी वे कायम रहे। जब आक्रमणकारी क्रूरता से उनकी भूमि पर कब्ज़ा कर लेते थे तो वे अपने जानवर लेकर दूसरी और उपजाऊ भूमि पर जाकर नये प्रजातन्त्र बसा लेते थे। और क्योंकि जमीन बहुत पडी थी इसलिए भारत मे सदा दूध और घी की नदियाँ बहती रहीं।

भारत और उसके आसपास के द्वीपो की उपजाऊ भूमि, उसके सोने, कीमती मसालों और धन-धान्य की कहानियाँ सुन-सुनकर विदेशी यहाँ आने को ललचाते थे। इसलिए हमारे देश पर

बहुत से हमले हुए, विशेषकर उत्तर-पश्चिम के दर्रों से होकर। यूरोप वालों के आने के बहुत पहले यूनानियों, फारस वालों, सीथियनों, हूणों, पठानों, मगोलों तथा और बहुत सी जातियों ने हमारे देश पर हमले किये थे। इन आक्रमणों के कारण देश में अकाल पड़े और उसकी सम्पदा नष्ट होती गई। जिन दिनों विदेशी राजा यहाँ शासन करते थे, नहरों, कुओं, सड़कों और अन्य इमारतों की देखभाल नहीं हुई।

फिर भी, बहुत अधिक उपज होने के कारण ससार की एक महानतम सभ्यता हमारे देश मे फली-फूली। ससार के कुछ प्राचीनतम ग्रन्थों की रचना यहीं हुई। ऋग्वेद के ऋषियों की निर्भयता उनके सृष्टि-सूक्त से स्पष्ट है। अन्य वेदों और उनसे पहले रचे गए उपनिषदों मे हमारे महर्षियों का ज्ञान सचित है। महात्मा बुद्ध ने मानव-मात्र के लिए प्रेम और दया का सन्देश सबसे पहले इसी देश में दिया। उन्हीं दिनों महावीर जिन ने पौधों, जानवरों तथा आदमियों के प्रति दया का उपदेश दिया। रामायण और महाभारत जैसे महाग्रन्थों में प्रेम और लोलुपता, क्रोध और

दयालुता की कहानियाँ मानव-प्रकृति का गहन अध्ययन करने के पश्चात् लिखी गई हैं। कालिदास, हर्ष, बाण और शूद्रक के नाटक तथा अजन्ता की चित्रकारी मनुष्य की उच्चतम कला कृतियों के नमूने हैं। शिल्प-कला में जो कुशलता हमारे पूर्वजों ने दिखाई वैसी अन्य लोगों मे बहुत ही कम दिखाई पडती है। तब हमारी नृत्य-कला—आदिकालीन खेतों के नृत्यों से लेकर अत्यन्त भाव-पूर्ण भरतनाट्यम् तक—गतिपूर्ण सौन्दर्य और सौष्ठव की परा-काष्ठा पर पहुँच गई। और जब तक धरती माता की कृपा से धन-धान्य की बहुतायत रही तब तक हमारे देशवासी ऐसी ही उच्चकोटि की कलाओं की साधना करते रहे।

[१०]

दुर्भाग्यवश अँग्रेजों की विजय से देश केवल गुलाम ही नहीं हो गया, वरन् उसकी भूमि-व्यवस्था भी बदल गई।

पहले हमारे यहाँ भूमि पर किसी एक व्यक्ति का स्वामित्व नहीं माना जाता था, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति का उस पर कुछ अधि-कार था। किन्तु अँग्रेजों के आने के साथ ही भूमि पर व्यक्ति-विशेष के स्वामित्व का सिद्धान्त यहाँ भी प्रचलित हुआ। खुद उनकी कृषि-व्यवस्था मे भी बडा हेर-फेर हो चुका था। भूमि पर पहले राजा का स्वामित्व माना जाता था, फिर सामन्तों व सर-दारों का, उसके बाद अमीर किसानों का। इससे छोटे किसान और खेतिहर मजदूरों का बुरी तरह शोषण हुआ। अँग्रेजों के राज्य मे भारत मे भी यही हुआ। लार्ड कार्नवालिस ने जो कानून बनाया उसके अनुसार पहले बगाल और फिर सारे देश मे जमींदारों का एक अलग वर्ग बन गया। वे अँग्रेजी सरकार को थोडी मालगुजारी देते थे, किन्तु छोटे खेतिहरों और किसानों से मनमाना धन वसूल करते थे।

इससे छोटे किसान दिनो-दिन गरीब होते गए। बहुतों को

गॉव छोड़कर काम ढूंढने के लिए शहर जाना पड़ा। अंग्रेजों द्वारा खोले गए कारखानों मे गॉव से आये हुए सभी किसानों को काम नहीं मिल सका, इसलिए भी बहुत से लोग बेकार व निर्धन हो गए। सिवाय इस बुरी व्यवस्था के, जिसमें जमींदार तो सारा धन हड़प लेता था और छोटे किसान भूखों मरते थे या गॉव छोडकर चले जाते थे, सिंचाई की व्यवस्था मे कोई सुधार नहीं हुआ। यही कारण था कि अक्सर अकाल पड़ते रहे। हमारे देश के किसानों की यह दयनीय दशा अब भी जारी है।

विदेशियो की गुलामी ने हमे बरबाद कर दिया, लेकिन हम गुलाम इसीलिए बने क्योंकि हम कमजोर थे। हमारे महाराजाओं और नवाबों ने नहर, तालाब व सडकों आदि जैसे जन-कार्यों की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया था। इसके विपरीत अंग्रेज बिना हमारी मदद करने की किसी इच्छा के ही पश्चिम में ईजाद की हुई मशीनें यहॉ ले आए।

[११]

बरतानिया मे भूमि-व्यवस्था मे बडे-बड़े परिवर्तन हुए थे। एक जमाना था जब किसान खुले खेतों में काम करते थे, थोडी-सी भूमि एक साल जोत लेते थे और बाकी खाली पड़ी रहती थी। नॉर्मन-विजय के बाद किसान अपने-अपने छोटे छोटे खेतों में या सामन्त या सरदार के खेतों मे, जिनका अधिकाश भूमि पर अधिकार था, काम करते रहे। सामन्त ने यह देखने के लिए कि गॉव वाले काम करते रहें, कारिन्दे रख छोडे थे। इसके फलस्वरूप जितनी मेहनत किसान अपने छोटे-छोटे खेतों पर करते थे उससे अधिक सामन्त के लिए करते थे। चौदहवीं सदी मे इगलैण्ड मे बहुत जोर का प्लेग फैला, जिसे 'काली मौत' कहते हैं और उसमें एक तिहाई लोग मर गए। खेतों मे फसल उगाने के लिए कोई भी आदमी नहीं मिल सका और भूमि बंजर ही पड़ी रही।
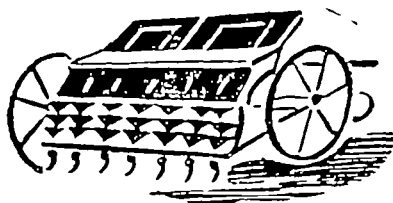
अत जमींदारों ने अपने-अपने खेतो को भेडो के लिए चरागाहों मे वदल दिया। ऊन का उस समय अच्छा मूल्य मिल जाता था, अत लार्डों (सामन्तों) ने अधिकाधिक जमीन भेडों के लिए घेरनी शुरू की। उनके लालच का कोई अन्त न था। उन्होंने सबके उपयोग मे आने वाले चरागाह भी घेर लिये, और वेचारे गरीब किसानों के पास अपने मवेशी चराने के लिए भी कोई जगह न रह गई।

अठारहवीं शताब्दी मे लोगों ने अधिक अन्न उत्पन्न करने की बात सोचनी शुरू की। इसी समय के लगभग एक अत्यन्त लाभदायक आविष्कार हुआ। यह आविष्कार था बीज बोने की मशीन का। इससे बीज एक सीध मे बोये जाते थे और उतने बरबाद नहीं होते थे जितने हाथ से छितराकर बोने मे। पौधे भी सीधी पंक्तियो मे निकलते थे। इन पक्तियो के बीच उगने वाली घास-फूस को साफ करना भी आसान था। इसके फलस्वरूप एक नये प्रकार की खेती शुरू हुई, जिससे गाजर, मूलियॉ और शलजम वगैरह उगाए जाने लगे। जाड़ो मे ये मवेशियो के खाने के काम आते थे। इस प्रकार पशु धन की वृद्धि हुई।

तब तक भाप के इजन का आविष्कार भी हो चुका था और उससे चलने वाली मशीनो के कारण नये शहरों का निर्माण हुआ जहॉ चरखो व करघो के बदले कारखानो मे कपडा बनने लगा। शहर वाले किसानो से अनाज और मास खरीदते रहे तथा बहुत

से बेकार गॉव वालों को शहरों में काम भी मिल गया।

अत पुराने 'खुले खेतों' को मिटाने के लिए एक नई तरह का 'घेरा' शुरू हुआ। जमींदार और वडे-वडे किसान भूमि के वडे-वडे चकों को घेरने लगे, जिसमे वे जिस तरह की चाहें खेती कर सकें। इसका फल यह हुआ कि गरीव किसान, जिनके पास खेतों पर घेरा लगाने के लिए और नई मशीनें और नये औजार खरीदने के लिए पैसे न थे, अपनी जमीनें वेचकर अपने पडोसियों के खेतों पर मजदूरी करने लगे, या शहरों के नये कारखानों मे काम करने के लिए चले गए। गरीबों के लिए, जिन्हें 'झोंपडी वाले' कहते हैं, यह वडा कठिन समय था। भूख और असन्तोष का वोलबाला था। लेकिन 'नई खेती' ने 'खुले खेतों' पर विजय पाई, क्योंकि पार्लामेंट ने भू-पतियों का समर्थन किया।

फिर भी, इस नई खेती के कारण खेतीवारी के तरीकों मे अवश्य ही सुधार हुआ। खेती के लिए मशीन का तो अधिकाधिक इस्तेमाल होने लगा था, पर साथ ही वैज्ञानिकों ने इस वात का पता लगाया कि विभिन्न खादों का उपयोग करके ज्यादा अच्छी फ़सल पैदा की जा सकती है। इन वैज्ञानिक खादों को रासायनिक
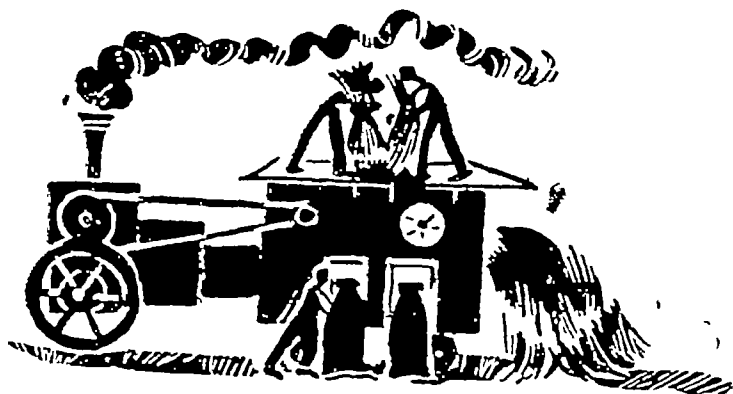
खाद कहते हैं। 'गुआना' नाम की एक खाद दक्षिण अमरीका से आई। दूसरी उपयोगी खाद एमोनिया साल्ट, कोयले की गैस के उत्पादन के साथ-ही-साथ बनाई जाती है। इस गैस का उपयोग तेल के दीयों के स्थान पर रोशनी करने के लिए होना शुरू हो गया।

वैज्ञानिकों ने इस बात का भी अध्ययन करना शुरू किया कि पेड-पौधे जमीन, हवा और पानी से अपना भोजन कैसे लेते हैं और भूमि की सिंचाई के ढग मे बहुत से सुधार हुए।

मशीनों मे उससे भी ज्यादा तरक्की हुई। अठारहवीं सदी मे खेत जोतने के लिए हाथ से चलाए जाने वाले पुराने हल के बदले एक नई उपयोगी मशीन का आविष्कार हुआ और इसका आम इस्तेमाल होने लगा। यह नया हल या तो पानी से चलता था या हवा की शक्ति से या घोडो से। भाप से चलने वाले हल उन्नीसवीं सदी मे आए और धान बोने तथा काटने के लिए भी इसी वाह्य शक्ति का इस्तेमाल होने लगा।

बीसवीं सदी मे पेट्रोल से चलने वाले नव-आविष्कृत ट्रेक्टर किसानों के लिए अधिक उपयोगी मालूम होने लगे। ये ट्रेक्टर खास तौर पर अमरीका के बडे-बडे खेतो और सोवियत रूस के सामूहिक खेतो पर, जहाँ बहुत से किसान मिलकर सामूहिक रूप से खेती करते हैं, बडे उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

ट्रेक्टर से जमीन जोती जा सकती है, उपजाई जा सकती है। उसकी मदद से धान खलिहानो मे एकत्र किया जा सकता है। इससे अनाज पीसने की मशीन को चलाया व रोका जा सकता है। यह जडे खोदकर निकाल सकता है और बहुत से दूसरे काम कर सकता है। इससे वक्त की बडी बचत होती है, जैसे इससे एक दिन मे पाँच-छ एकड जमीन जोती जा सकती है जबकि बैलो की एक जोडी से दिन-भर मे एक ही एकड खेत जोता जा सकता है।

सुबह से शाम तक एक ट्रेक्टर बीस एकड खेत काट सकता है। उसके साथ ही दूसरी मशीनों से जडे और भूसा निकाला जा सकता है या आटा पीसा जा सकता है। दूसरी मशीने भी है—फसल काटने के लिए, वोने के लिए, सभी तरह के हल, फावडे और वर्मे तथा दूसरे औजार, जिन्हे खाद देने के लिए ट्रैक्टर मे लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आजकल गाय-भैंस दुहने, मक्खन निकालने और वोतलों मे दूध भरने के लिए वहुत सी आश्चर्यजनक मशीनें वन चुकी हैं।

[१२]

लेकिन दुनिया मे उपलब्ध इन सब मशीनो का प्रयोग भारतीय किसान तभी कर सकते हैं जब जमीन पर उनका अधिकार हो। इसके लिए भूमि-सुधार नितान्त आवश्यक है।

हमारे वैज्ञानिक भाखरा बॉध और दामोदर-घाटी योजना आदि नव-निर्माण के कार्यों मे वडी दिलचस्पी ले रहे है, ताकि उन स्थानो मे सिचाई के लिए अधिक पानी उपलब्ध हो सके जहॉ वर्षा पर निर्भर नहीं रहा जा सकता या पानी कम मिलता है।

हमारे देश मे अधिक अन्न उपजाने की समस्या सर्वाधिक महत्त्व की है। इसी एक चीज पर हम अपनी भावी सभ्यता का निर्माण करने की सबसे अधिक आशा कर सकते है। जब तक हम हर साल उतना खाद्यान्न नहीं उपजाने लगते जितने की हमे आवश्यकता है, तब तक हम सिर्फ नकली सभ्यता की ही रचना कर सकते है। पुरानी दुनिया के किसी विद्वान ने जैसा कि एक वार कहा था, 'जब खेती शुरू होती है तो अन्य कलाएँ उसके पीछे-पीछे अपने-आप आ जाती है।' किसान ही मानव-सभ्यता के संस्थापक है।

चौथा अध्याय

जीवनदायिनी चिनगारी

[१]

जब आप बच्चे थे और जाडों की रातों में आग के सामने बैठा करते थे, तब की बात शायद आपको याद हो। आपकी माँ आपको राजाओं और रानियों, सूर्य और चन्द्रमा, शेर और गीदड़ व जादू के गलीचों तथा अलाउद्दीन के आश्चर्यजनक चिराग की कहानियाँ सुनाया करती थीं, लेकिन क्या कभी उन्होंने आपको आग की कहानी भी सुनाई थी ?

मैं नहीं समझता कि उन्होंने सुनाई होगी, क्योंकि यह कहानी हजारों साल पहले की है। और शायद वे इसके बारे में जानती भी न हों। आइए, हम आपको आग की कहानी सुनाएँ।

वर्षों पहले जब पाषाण-युग का इन्सान कन्दराओं एव पेडों की खोहों मे रहता था, वह अपने आसपास की हरेक चीज से डरता था। बादलों की गडगड़ाहट, बिजली की चमक या वर्षा और तूफान के लक्षण देखते ही वह बचाव के लिए झट अपनी कन्दरा मे भाग जाता था। जगल मे वह दूसरे जगली जानवरों की ही तरह घूमता-फिरता था। पेडों से वह फल तोडकर खा लेता था या भोंडे हथियारों से छोटे-छोटे जानवरों का शिकार कर लेता था और इन जानवरों का कच्चा मास ही वह खा जाता था। अपने लम्बे-लम्बे तेज नाखूनों से वह इस मास को चीर लेता था और बिना भूने ही वह इसे अपने कड़े दाँतों से चबा डालता था, क्योंकि उसे आग का इस्तेमाल करना नहीं आता था।

आग का इस्तेमाल करना उसे क्यों नहीं आता था ?

जैसा कि मैं आपको बता चुका हूँ, यह पृथ्वी, जिस पर हम रहते हैं, सूर्य का ही छोटा-सा टुकडा है। सूर्य धधकती हुई आग

का गोला है। कहते हैं जब जलती हुई आग का यह गोला सूर्य से टूटकर अलग हो गया, उसके बाद लाखों वर्ष तक यह शून्य मे घूमता रहा और फिर धीरे-धीरे ठण्डा हो गया, जिससे पृथ्वी की कडी सतह, पानी तथा दूसरे तत्त्वों का निर्माण हुआ। आग के इस गोले की बाहरी सतह, जो जमीन बन गई थी, हिम-युग मे जमी ही रही। लेकिन पृथ्वी के नीचे का भाग अभी तक गरम ही है, क्योंकि यह ज्वालामुखी पर्वत से निकलने वाले जलते हुए लावे की तरह है। इस आग का, जो पृथ्वी के गर्भ मे छिपी पडी है, कन्दराओं मे रहने वाले इन्सान को पता न था।

[२]

कहा जाता है उसके बाद एक दिन बिजली गिरने से किसी जगल मे आग लग गई।

कन्दराओं मे रहने वाले इन्सान ने यकायक पेडों के चटखने और डालों के गिरने की आवाज सुनी। उसने सोचा कि कोई दुश्मन लम्बी लाल-लाल जीभ निकाले पेडों पर कूदता हुआ और अपने काले-काले बाल आकाश मे चारों ओर फैलाए रास्ते मे जो कुछ भी पडता है उसकी हत्या करते हुए बढा आ रहा है। उसने जाकर अपनी कन्दरा मे रहने वाले दूसरे साथियों से इस भयकर दानव के बारे मे कहा।

कन्दराओं मे रहने वाले सभी आदमी अपनी-अपनी कुल्हा-डियाँ और पत्थर के दूसरे भोंडे हथियार लेकर छिपते हुए इस दानव की हत्या करने के लिए निकल आए। लेकिन जगल जल रहा था और जलते हुए पेड चटख-चटखकर गिर रहे थे।

उनमे से एक गुफावासी ने अपनी गदा हवा मे घुमाई और और निकटतम पेड पर दे मारी। पेड की जलती हुई डाले दानव के हाथों की तरह मालूम हो रही थीं और धुएँ से घिरी हुई चोटी उसके सिर की तरह, और मालूम होता था कि वह जलता हुआ

लाल-लाल क्रोध उगल रहा हो। पेड़ की जलती हुई एक डाल टूटकर गिर पड़ी। गुफावासियों का झुण्ड बड़ी शान से उसे

अपनी कन्दरा मे घसीट लाया। उन्होंने इसे कन्दरा मे बन्द किया और इसे कैद रखने के लिए कन्दरा के मुँह पर बड़ा-सा पत्थर रख दिया।

दूसरे दिन सवेरे उन्होंने पत्थर हटाया और उनकी साँस फूलने लगी व दम घुटने लगा। फिर वह दानव मर गया। गुफावासी बाहर ठण्ड मे बैठे दरारों मे से अपने शत्रु की मृत्यु-यातना देखते रहे।

इसके बाद वे गुफा के अन्दर गये। पेड की डाल जल चुकी थी और उस पर राख की तह जमी हुई थी, लेकिन लकडी का वह गट्ठा अभी भी गरम था।

गुफावासियों को, जिनके दाँत बाहर की बरफीली ठण्ड से कटकटा रहे थे, गुफा बडी आरामदेह मालूम हुई। उनके ठिठुरते हुए हाथ-पैर गरम हुए और वे गरम राख के ढेर के चारों ओर बैठ गए। उन्होंने देखा कि उनका शत्रु पालतू जानवर की तरह चुपचाप और गरम पडा था।

तब सभी गुफावासी जगल की ओर दौडे और जलती हुई डालें अपनी-अपनी गुफाओं मे घसीट लाए। वह विकराल दानव, जो इतना भयावह मालूम होता था, अब मित्र बन गया और गुफावासी आग के चारों ओर नाचते रहे।

लेकिन तब भी उन लोगो को मालूम नहीं हुआ कि आग आती कहाँ से है। जब बारिश होती थी और आग बुझ जाती थी, तब दोस्त की कमी महसूस होती थी।

[३]

कुछ समय के बाद ऐसा हुआ कि एक गुफावासी जानवरों को काटने के लिए पत्थर का एक टुकडा तेज करके कुल्हाडी बना रहा था। वह क्या देखता है कि उस पत्थर पर रगड देने से आग की चिनगारियाँ निकलने लगी है। वह डरकर अपने साथियो के

पास दौड़ा गया और उसने इन्हें इस भयावह आश्चर्य की बात बताई। दूसरे गुफावासियों ने भी डरते-डरते और चिनगारियाँ निकालने की कोशिश की। उन्होंने देखा कि जब इस तरह का चकमक पत्थर दूसरे चकमक से टकराता है तो इससे पेड की पत्तियों मे आग लग जाती है। उन्हें यह देखकर अत्यधिक खुशी हुई कि उनका पुराना मित्र अग्निदेव बहुत दिनों तक सोने के बाद फिर जाग उठा है और वापस आ गया है।

इस तरह आग का जन्म हुआ और सदियों तक इन्सान एक चकमक पर दूसरा चकमक रगडकर इसे पैदा करता रहा। क्या यह अचरज की बात नहीं है कि उस कडे पत्थर के पेट में कोमल सुखदायी आग की ज्वालाओं का वास हो? लेकिन इन्सान ने शायद इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का पता मिस्र, बेबीलोन, चीन और भारत के प्राचीन देशों में इतिहास शुरू होने के पहले किसी समय लगाया होगा।

बाद मे आग जलाने के लिए एक 'शीघ्र दाह्य बक्स' बनाया गया, जिसमें चकमक, लोहे का टुकडा और कुछ शीघ्र जलने वाली वस्तुएँ रहती थीं। लोहे से पत्थर पर चोट की जाती थी और जो चिनगारियाँ निकलती थीं उनसे ये वस्तुएँ आग पकड़ लेती थीं। इस प्रकार आग की लपटें पैदा हुईं।

इस बक्स को इधर-उधर लाने-ले जाने में बड़ी कठिनाई होती थी, अत दियासलाई की डिबिया का आविष्कार हुआ। देवदार की लकडी को काट-काटकर तीलियाँ बनाई जाती हैं। इनको पैराफिन के तेल मे डुबा लिया जाता है ताकि लकडी ज्यादा अच्छी तरह जल सके। तीलियों के सूख जाने पर मशीन उनकी नोकों पर गोंद और अन्य चीजों का मिश्रण, जिसमे खास चीज फास्फोरस होती है, लगा देती है। फास्फोरस से बने मिश्रण से तीली चटपट सुलग जाती है और इस तरह आग

जेब मे रखकर इधर-उधर ले जाई जा सकती है।

[४]

आइए अब हम देखें कि इन्सान ने किस तरह आग जलाने की दशा मे सुधार करके अपने विभिन्न कार्यों के लिए इसका इस्तेमाल करना शुरू किया।

पहले मास भूनने के अतिरिक्त गुफावासियो के लिए आग का सिर्फ एक ही फायदा था—अपने-आपको गरम करना। वे अँधेरे मे ही सोते थे और दिन मे सूर्य की रोशनी से काम चलाते थे।

बाद मे उन्होंने देखा कि जिन जानवरों को वे भूनते हैं उनकी

चरबी चमक सकती है और जल भी सकती है। अत उन्होने इस चरबी को पत्थर के खोल मे रखा और उसमे भेड के थोडे-से ऊन की बत्ती बनाकर लगा दी। यह उनकी पहली लालटैन थी और दुनिया के कई हिस्सो मे आज भी लोग इसका इस्तेमाल करते है। हमारे देश मे कुम्हार मिट्टी के छोटे-छोटे दीये बनाते हैं, जिनमे तेल और रुई की बत्ती लगाकर हम दीपावली की रात को सैकडों की सख्या मे जलाते है।

अपने पुराने शास्त्र वेदों मे हम पढते है कि हमारे पुरखे
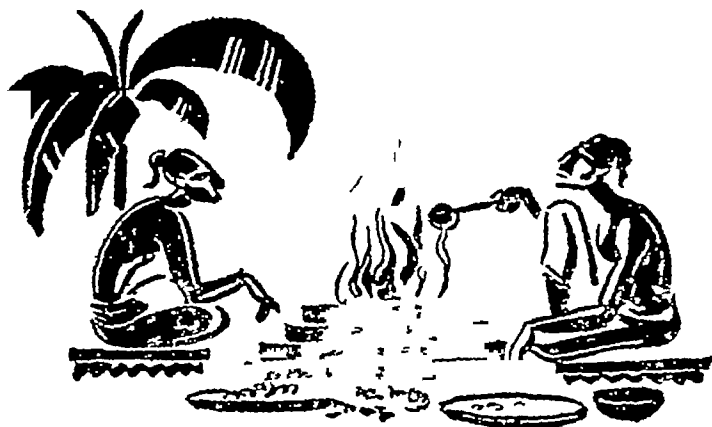
अग्नि को देवता मानकर उसकी पूजा करते थे और कोई भी सस्कार विना अग्नि के पूरा नहीं होता था। पुजारी इसके चारों ओर वैठकर हवन और पूजा आदि करते थे।

मालूम होता है कि हमारे देश मे पहले-पहल जो अग्नि-स्थान वनाये गए, वे जमीन मे खोदे गए छोटे-छोटे गडढों की तरह या खोखले पत्थर के रूप मे थे, जिन्हें कमरे के बीच मे रख दिया जाता था। इन हवन-कुण्डों मे जो लकडी जलाई जाती थी वह चन्दन या उसी से मिलती-जुलती होती थी, अत लोगों को धुआँ वुरा न लगता था और चिमनियाँ नहीं वनाई जाती थीं। दूसरे प्राचीन देशों मे भी आग कमरे के वीच मे रखे वड़े-से पत्थर पर ही जलाई जाती थी। लेकिन वे लोग छत मे छेद कर देते थे जिससे धुआँ निकल सके। ठीक तरह की ईंटों की चिमनी वहुत दिनों के वाद वनी।

एक लम्वे अरसे के वाद इन्सान ने वह चरवी वनाने का विचार किया जिसे वह दीयों मे मोमवत्ती की तरह जलाता था। शायद उसने जाडे मे इस चरवी को वत्ती-सहित ही जमते देखा

होगा और देखा होगा कि इन लैम्पों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सकता था।

शुरू शुरू मे बनी इन बत्तियो को डिबरी के नाम से पुकारा जाता था, क्योंकि ये सिर्फ चरबी मे डुबोई हुई बत्तियाँ थीं।

समय गुज़रता गया और उससे बडी और अच्छी बत्तियाँ बनने लगीं। कई बत्तियो को एक साथ ही जलाने का रिवाज चला, क्योंकि वे एक साथ जलने पर सुन्दर लगती थीं। दुनिया के करोडों घरो मे लोग आज भी झाड फानूसो का इस्तेमाल करते हैं, जिन पर दीये या मोमबत्तियाँ सजी रहती है।

मोमबत्तियों मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि वे हवा से बुझ जाती हैं, उनका मोम पिघल जाता है और वे अधिक देर तक नहीं टिक पातीं।

ये कमियाँ उन बुद्धिमान् व्यक्तियों की दृष्टि मे भी आई और उन्होंने रोशनी करने के लिए कोई और ढग निकालने की कोशिश की।

[५]

वह इन्सान सचमुच बडा ही बुद्धिमान् होगा जिसने सुन्दर रोशनी देने वाली उससे ज्यादा अच्छी चीज़ गेस का आविष्कार किया।

जैसा कि शायद आपको मालूम होगा, गेस कोयले से बनती है। उस बुद्धिमान् आदमी ने कोयले के कुछ टुकडे लिये और उन्हे एक टूटीदार बरतन मे डाला, जिसे 'रिटॉर्ट' कहते है। इस बरतन के नीचे उसने आग जलाई और उसके बाद इसकी टूटी पर सलाई लगाई। बरतन से ही भभककर चमकती हुई लपट निकलने लगी। यही गेस की पहली लपट थी।

आप पूछेंगे कि कोयला कहाँ से आया।

सचमुच ही यह आसान सी बात समझना बडा मुश्किल है।

लेकिन वास्तव मे यह बात है बिलकुल सीधी। हजारों साल पहले, जैसे कि आपको मालूम है, जमीन ठूँठ-दार पेड़ों के बड़े-बड़े जगलों से भरी थी। इनमे से कुछ जमीन मे दब गए तथा बाकी चीजों से मिल गए तथा युगों तक ये वहीं दबे पड़े रहे और
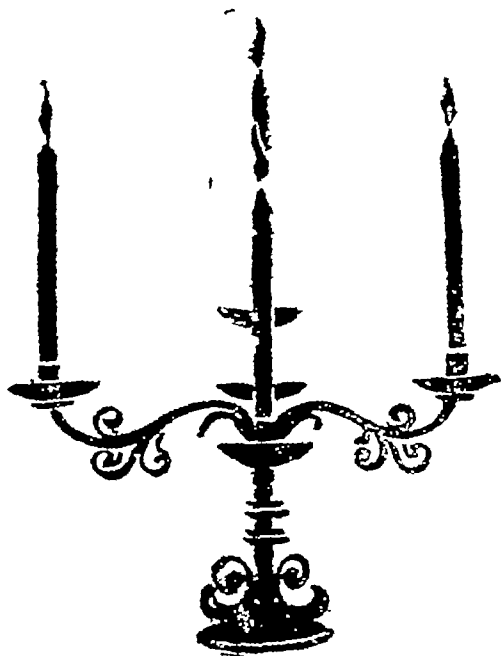
जमीन की बाहरी सतह के नीचे ठोस, कड़ी और काली चट्टानों मे बदल गए। यही कोयला था।

पहले-पहल कोयले का पता अकस्मात् ही चला होगा। उसके बाद इन्सान इसके लिए ज़मीन खोदने लगा। अब भी खान से कोयला खोदकर निकालना बड़ा दुरूह कार्य है। पहले उस स्थान पर, जहाँ कोयले की खान हो, ज़मीन में गहरा-सा गड्ढा खोदा जाता है। इस गड्ढे को 'शैफ्ट' (खान का मार्ग) कहते हैं। लिफ्ट की तरह का एक पिंजरा इस शैफ्ट से ऊपर-नीचे आता-जाता और लोगों को खान के अन्दर ले जाता है। इसका नियन्त्रण दो पहियों से होता है। शैफ्ट का एक पहिया आदमियों को ऊपर-नीचे ले आता और ले जाता है और दूसरा पहिया कोयला
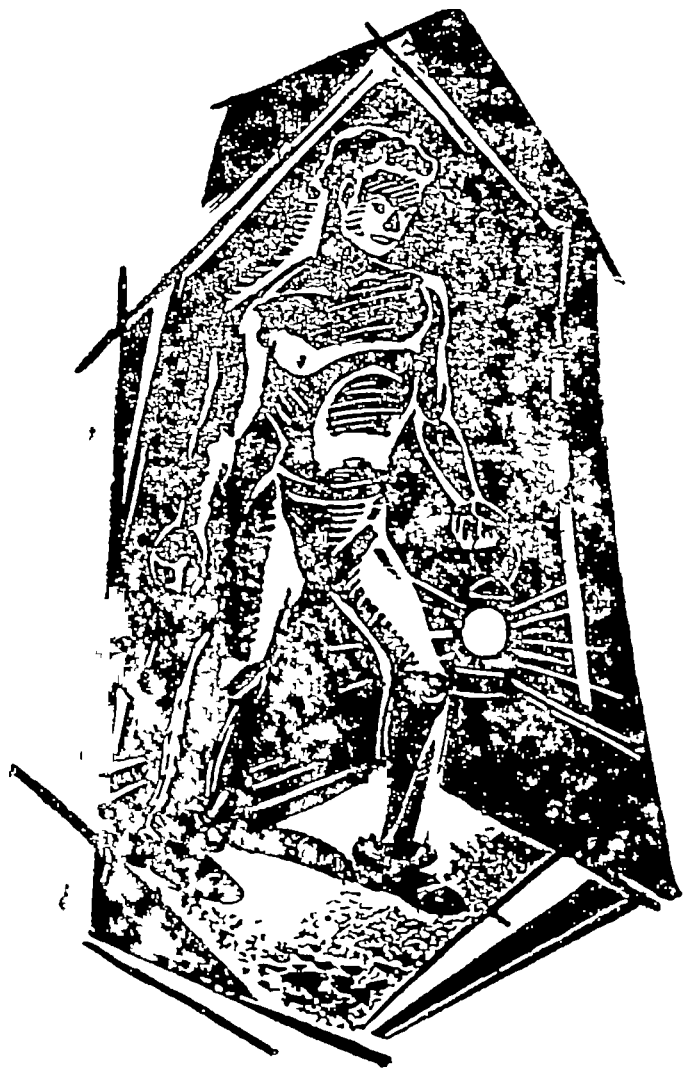
कोयला वाहर लाता है।

किसी के भी खान में उतरने के पहले इस वात की पूरी जॉच कर ली जाती है कि उसके पास कोई दाहक वस्तु तो नहीं है, जैसे दियासलाई, क्योंकि जमीन के नीचे कोयले से गैस निकलती है और जरा-सी लौ भी यदि उसके निकट आ जाय तो विस्फोट हो सकता है। खनिक अपने साथ विजली के लैंप ले जाते हैं और इस रोशनी मे वे कोयले पर कुदाली से प्रहार करते हैं तथा उसे निकालते है। यह वडा खतरनाक काम है, क्योंकि कोयले की परत जरा-सी असावधानी से खुद उनके ऊपर गिर सकती है।

जब कोयले का वड़ा-सा ढेर इकट्ठा हो जाता है तो इसे ट्रकों में लादा जाता है और इन ट्रकों को कभी खच्चर, कभी मशीनें खींचकर

शैफ्ट के नीचे तक ले जाती है। यहाँ से यह कोयला ऊपर खान के वाहर भेजा जाता है। दिन-भर के कड़े परिश्रम के वाद मजदूर भी कालिख से पुते चेहरे और गन्दे कपड़े लिये इसी शैफ्ट से रोशनी और ताजी हवा की दुनिया मे आते हैं।

गैस के कारखानों मे गैस कोयले को गरम करके और उसमे से निकले हुए धुएँ को रोककर निकाली जाती है। यह गैस देखी नहीं जा सकती, लेकिन सभी जानते हैं इसकी गन्ध कैसी होती है।

इस गैस को वड़े-वडे गोल गैस के डिब्बों मे एकत्र किया

जाता है, जिन्हें अक्सर किसी भी शहर के बाहर देखा जा सकता है। इस कोयले से ही पत्थर का कोयला तैयार होता है जिससे अपने घरों मे चूल्हे और अँगीठियाँ जलाते हैं। सरदी मे यह कोयला हमे गरमी पहुँचाता है और गैस, जो कारखानो से पाइप द्वारा नगर के विभिन्न भागों मे पहुँचाई जाती है, कमरों मे रोशनी करने, उन्हें गरम रखने और गैस के स्टोव पर खाना पकाने के काम आती है।

[६]

बीसवीं सदी के शुरू-शुरू के सालों तक लोग समझते थे कि गैस बडी आश्चर्यजनक चीज़ है। लेकिन बिजली का आविष्कार होने के बाद अब गैस पुरानी पड गई है। बिजली बहुत आसानी से जल जाती है और उससे कहीं अच्छी रोशनी देती है। गरमी देने का भी यह उससे कहीं तेज और स्वच्छ माध्यम है। दरअसल इस बिजली से तो महान् चमत्कार हो सकते हैं। इसी से ट्रामे सडकों पर चलती है, इसी से हमारे सिर पर पखे चलते है, इसी की मदद से रेफ्रिजरेटर मे बरफ जम जाती है, इसीसे छापेखाने चलते हैं और हमे रोज अपना अखबार मिलता है। यही कारखानों को विद्युत्-शक्ति देती है। इसीसे आदमी और औरते परदे पर बोलते-चलते सिनेमा द्वारा हमारा मनोरंजन करते है। बिजली का आविष्कार मनुष्य जाति के लिए महान् वरदान है।

भला बिजली मे आग का पता कैसे लगा ?

बहुत पुराने जमाने मे यूनान निवासियों ने देखा कि यदि अम्बर के दो टुकडे एक साथ लपेट दिए जायँ, तो वे गरम हो जाते हैं तथा कई छोटी-छोटी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्पित कर लेते है और किसी धातु के टुकडे के निकट इन्हे रख देने पर चिनगारियाँ निकलने लगती है। सदियों तक अम्बर का यह गुण लोगों को आश्चर्यचकित करता रहा। लेकिन १८वीं सदी मे ही
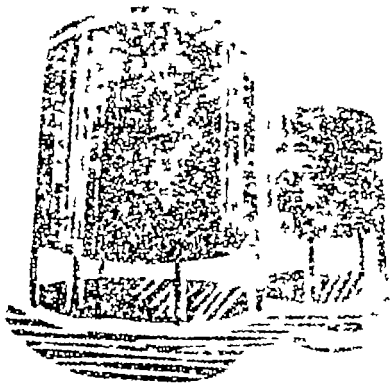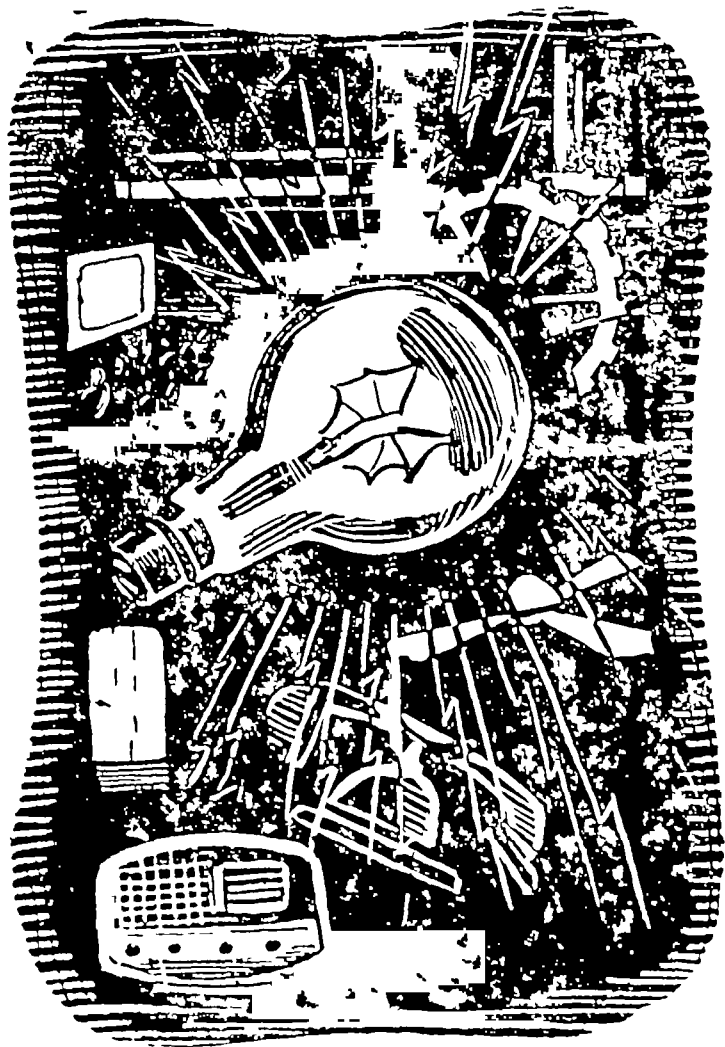
और धातु की उस तश्तरी का पीतल जिसमें वह मरा हुआ मेढक रखा था। इस तरह मालूम हुआ कि मेढक के पैर के स्नायु केवल विजली के सचारक का काम कर रहे थे। वहुत से प्रयोगों के वाद वोल्टा ने पता लगाया कि जस्ता और तावा विजली पैदा करने के लिए वाकी सारी धातुओं के मेल से-अच्छे हैं। उसने गत्ता लिया और उसे नमक के पानी मे डुवोकर उसकी और जस्ते व तावे की कुछ प्लेटें वनाईं। उसके वाद उसने तावे का एक टुकडा सवसे नीचे रखा, उसके ऊपर जस्ते का एक टुकडा और सवसे ऊपर गत्ता।

इन तीनों की कई तहें एक-दूसरे पर रखी गईं और सवसे नीचे के तावे के टुकडे को ढेर के सवसे ऊपर रखे गए जस्ते के टुकडे से तार के दो टुकडों द्वारा मिलाकर वोल्टा ने विजली की चिनगारियाँ निकाल लीं। इसी प्रयोग से हमे आज मिलने वाली विजली की वैटरी की नींव पडी। इसका सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक वस्तु मे दो विभिन्न और वरावर मात्रा मे धन और ऋण विजली होती हैं। इन्हीं को प्रभार (चार्ज) कहते हैं। जव हम धन और ऋण चार्जों को किसी शक्ति से अलग कर देते हैं तो वे वडी तेजी से एक दूसरे की ओर दौडते हैं। हम इस तथ्य का लाभ उठाते हैं और उनसे अपना काम करा लेते हैं।

[७]

माइकल फैरेडे, जो इगलैण्ड मे पैदा हुआ था, एक वहुत वडा वैज्ञानिक था। उसने वहुत से प्रयोग करके विजली के वारे मे कई सत्यों का पता लगाया। फैरेडे एक लुहार का लडका था और काम करने के लिए एक जिल्दसाज की दुकान पर भेजा गया था। वहाँ उसने जिल्द वाँधने के लिए आने वाली वहुत सी कितावें पढीं। उससे उसकी उत्सुकता वढी। वह विज्ञान मे इतनी अधिक रुचि लेने लगा कि उसने रॉयल इस्टीट्यूशन लन्दन मे जाकर प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर हम्फ्री डेवी के कई भाषण सुने। वह वहीं एक

सहायक के पद पर नियुक्त हो गया और अन्ततः रॉयल इन्स्टीट्यूशन के अध्यक्ष पद तक पहुँच गया। रसायन-शास्त्र और पदार्थ-शास्त्र को उसकी बहुत बडी देन है। लेकिन उसका सबसे प्रसिद्ध प्रयोग वह था जिसके द्वारा उसने साबित किया कि एक तार मे बिजली का करण्ट, दूसरे तार मे भी जो पहले से किसी तरह सम्बद्ध न हो, उसी प्रकार का करण्ट पैदा कर सकता है। पारिभाषिक रूप से इसे विद्युत् प्रवेपण (इलैक्ट्रिक करण्ट) कहते है। १८३१ मे की गई इस महत्त्वपूर्ण खोज के आधार पर सभी डायनुमों जैसी मशीने बनी है जो हमारे घरो मे रोशनी के लिए विद्युत् करण्ट पैदा करती है, ट्रामे चलाती है और कारखानों मे जिनसे सैकडो मशीनें चलती है। माइकल फैरेडे ने इस बात का भी पता लगाया कि लवण के चूरे और मिश्रणो से बिजली का करण्ट किस तरह संचारित हो सकता है। इससे कीमती जेवरात पर सोने-चाँदी का मुलम्मा चढाना और 'इलेक्ट्रोप्लेटिंग' के दूसरे तरीके सम्भव हो गए। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि आग के बदले बिजली का प्रयोग करना बहुत हद तक फैरेडे के आविष्कारो की ही देन है।

हमें बिजली के व्यावहारिक उपयोगों को भूलना न चाहिए, क्योंकि इन्सान ने जीवन को अधिक सुखदायी बनाने और अपने मनोरजन के लिए ही इन चीज़ों का आविष्कार किया।

विद्युत-शक्ति के अतिरिक्त, जिससे हमारे कारखाने चलते हैं और हमारे लिए हज़ारों तरह की चीज़ें बनती हैं, हमारे पास टेलीफोन है। इससे हम अपने शहर के मित्रों और हज़ारों मील दूर इगलैण्ड और फ्रास मे बैठे हुए लोगों से भी बातचीत कर सकते हैं। बिना बिजली के यह सम्भव नहीं हो सकता था।

उसके बाद रेडियो, जो एक तरह का बेतार का टेलीफोन ही है, ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन से करोड़ों श्रोताओं को सन्देश भेज सकता है या सगीत सुना सकता है। रेडियो तूफ़ान व प्रकृति के अन्य प्रकोपों की चेतावनी देता है ताकि जहाज़ और छोटी-छोटी नावें भी, यह जानते हुए कि उन्हें किन खतरों से बचना है, गहरे समुद्रों मे निर्भय यात्रा कर सके।

बिजली की एक मशीन है जो एक घण्टे मे डबलरोटी के उन्नीस हज़ार टोस्ट काट सकती है। पाश्चात्य देशों में बिजली से चलने वाले रेस्तराॅ भी हैं। ग्राहक वहाॅ आकर जो भोजन चाहता है चुन लेता है। उसकी कीमत वह एक छेद मे डाल देता है। आलमारी का ढक्कन अपने-आप खुल जाता है और ग्राहक अपना भोजन लेकर मेज़ पर चला जाता है। भोजन समाप्त करने के बाद वह गन्दी तश्तरियों को बिजली से घूमने वाली एक पेटी पर रख देता है। ये तश्तरियाॅ बिजली की घूमने वाली एक मशीन में चली जाती हैं जो विभिन्न तश्तरियों को चुनती है, धोती है और सुखा देती है।

बिजली से चलने वाले हल भी हैं जिनसे खेत जोते जा सकते हैं। बिजली से गायें भी दुही जाती हैं।

वैज्ञानिक और डॉक्टर मानव-शरीर के आन्तरिक अवयवों
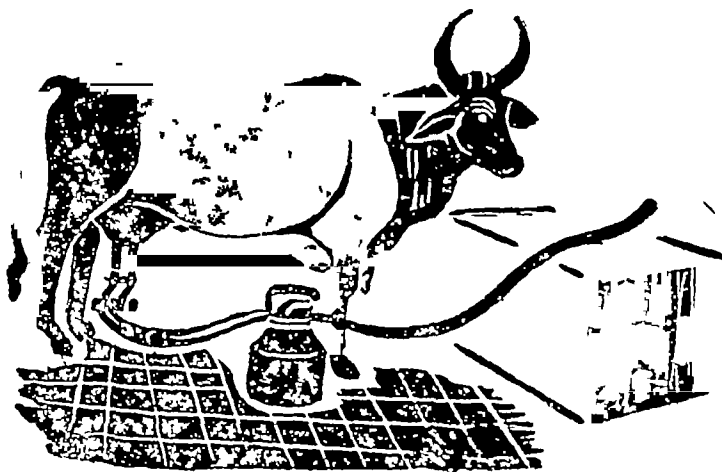
के चित्र 'एक्सरे' से ले सकते है। इससे उन्हें मालूम हो जाता है कि शरीर मे क्या विकार है। कपडों पर इस्तरी करने के लिए बिजली की इस्तरियाँ है। टोस्ट सेकने के लिए बिजली के स्टोव और कमरा गरम करने के लिए विजली के 'हीटर' है। दुनिया में, और भारत मे भी, हजारों मील तक रेलगाडियाँ बिजली से चलती है। इन रेलों के लिए निरन्तर धुआँ उगलने वाले इजन की जरूरत नहीं होती। विश्व की बहुत सी राजधानियो मे जमीन के नीचे चलने वाली रेलें हैं। यात्री इन रेलगाडियों तक लिफ्ट द्वारा जाते है जो बिजली का बटन दबाने से ही चलती है।

और आज अणु-शक्ति के कारण जिन आश्चर्यजनक सम्भावनाओं की कल्पना होने लगी है, उसके सामने यह सब बच्चों का खेल मालूम होता है।

[८]

हम अणु-बमों के बारे मे बहुत कुछ सुनते है, जो पूरे पूरे

नगरों को क्षण मात्र में नेस्तनाबूद कर सकते हैं। इस तरह के बम द्वितीय महायुद्ध के दौरान मे जापान मे हिरोशिमा और नागा-साकी पर गिराये गए थे। उन्होंने मीलों तक जो-कुछ भी था मिट्टी मे मिला दिया। दुर्जन राजनीतिज्ञ आज भी जो-कुछ भी वे कहते हैं यदि हम उसे करने को तैयार न हों तो हमे उससे भी भयानक अणुबमों की धमकी देते हैं।

किन्तु यदि विश्व को केवल उन भली चीजों के बारे मे मालूम होता जो अणु शक्ति के उचित उपयोग से मिल सकती हैं तो विश्व की गरीबी और दु ख बहुत कुछ दूर हो जाते।

अणु-शक्ति का आविष्कार महान् चमत्कार-सा मालूम होता है। केम्ब्रिज के एक वैज्ञानिक लार्ड रूदर फोर्ड ने इस सदी के आरम्भ मे अणु को फोड़ने की कोशिश शुरू की। अणु, जैसा कि आप जानते हैं, पदार्थ का छोटे-से-छोटा कण है। उससे भी छोटे कण होते हैं जिन्हें तडित परमाणु (इलेक्ट्रोन मौलिक्यूल) कहते हैं। यह आश्चर्य की बात है कि छोटे-से-छोटा यह कण विच्छिन्न होने पर इतनी अधिक शक्ति या आग दे सकता है जितनी और कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सकती। सचमुच यह बडा कठिन और दुरूह प्रयोग है, लेकिन इससे मालूम होता है कि इन्सान स्वय कितना आश्चर्यजनक है कि वह एक यन्त्र बनाकर जीवन के दैनिक कार्यों मे उपयोग के लिए इतनी अधिक शक्ति उसमे एकत्र कर सकता है।

यदि अणु-शक्ति का उपयोग जीवनोपयोगी कार्यों के लिए किया जाय तो यह थोडे-से-थोडे समय मे लहलहाती फ़सलें पैदा कर सकती है, तेज-से-तेज रफ्तार पर जहाज़ और वायुयान चला सकती है, पहाड़ तोड सकती है और नदियों के रास्ते बदल सकती है। वास्तव मे, अणु के इस्तेमाल से हमारे काम के घण्टे कम-से-कम हो सकते हैं जिससे हम सबको पढने-लिखने, सोचने-समझने,
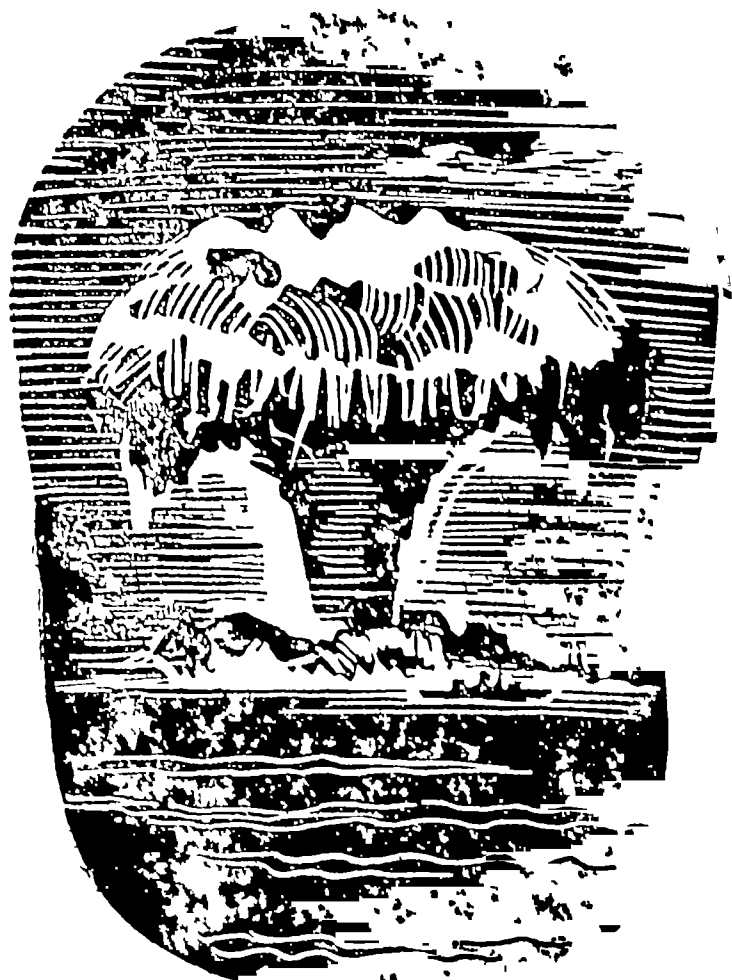
अनुभव करने और ज्यादा अच्छी तरह रहने के लिए काफी फुरसत मिल सके।

क्योंकि ये सारी शक्तियाँ अतीतकालीन मानव द्वारा जलाई गई उस पहली चिनगारी से ही उत्पन्न हुई हैं, बहुत से विद्वानों के विचार से आग ही जीवन का मुख्यतम सिद्धान्त एवं प्रधान जीवनदायिनी शक्ति है। महान् आयरिश लेखक जॉर्ज वर्नर्डशा ने प्रत्येक वस्तु का विश्लेषण जीवन-शक्ति के शब्दों मे किया है। फ्रांसीसी मनीषी वर्गसन का भी यही विचार था। इस विचार मे बहुत-कुछ तत्त्व है। किन्तु मेरे विचार से हमे समस्त विश्व को दृष्टि मे रखकर यह देखना चाहिए कि किस प्रकार मानव-जीवन की विभिन्न कार्यवाहियाँ और शक्तियाँ इन्सान को इस तरह का इन्सान बनाती हैं जिस तरह का वह आज है। इस तरह हम यह भी देख सकेंगे कि हमे और अधिक बुद्धिमान एव शक्तिशाली बनने के लिए क्या करना चाहिए और हम प्रकृति की अन्य शक्तियों को, जिन पर हम अभी तक विजय नही पा सके हैं, कैसे अपने अधीन कर सकते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

जाला, ताना और बाना

किसी विद्वान् ने एक बार कहा था कि 'मनुष्य का उत्कर्ष नीचता से उच्चता की ओर उतना नहीं हुआ जितना उलझनो से स्पष्टता की ओर'।

इसलिए जब हम देखते है कि इन्सान जो भी काम करना चाहता है अपने-आपको खुश करने के लिए ही करता है तो हमे आश्चर्य नहीं होता। स्वय अपने बारे मे इन्सान को बडी रुचि होती है। या यो कह लीजिए कि वह अपने-आपसे प्यार करता है।

अत हम देखते हैं कि सभी आदिम लोगों ने चीजें बनाने में बड़ी रुचि दिखाई, चाहे वह खाने के लिए भोजन हो या अपने-आपको गरम करने के लिए आग या पहनने के लिए कपडे। और यह इतनी विलक्षण बात है कि इन्सान हमेशा ही इन चीजों को सुन्दर-से-सुन्दर बनाने के लिए कितनी मेहनत करता है। गन्दी चीजें तो वह तभी बनाता है जब वह थका हुआ हो या उसके दिमाग पर अँधेरा छाया हो।

सम्भवत हमारे आरम्भिक पूर्वजों को वर्षा और शीत ऋतु बडी दुसह्य और कष्टदायक मालूम हुई। वे सिर्फ दो ही काम कर सकते थे—या तो जमीन के अन्दर किसी खोह मे जाकर शरण ले सकते थे या पहाडों पर किसी कन्दरा में, या वे अपना शरीर पत्तों या जानवरों की खाल से ढक सकते थे। बहुत समय तक उनके शरीर पर काफी बाल रहे जो उन्हें गरम रखते थे, लेकिन जलवायु-जनित कठिनाइयों से ये बाल कम होते गए और इन्सान को आत्म-रक्षा के लिए किसी तरह के घर की जरूरत हुई। वह जहाँ भी जाता था गुफाओं को अपने साथ नहीं ले जा सकता था, इसलिए उसे दूसरी तरह के घर मे रहना पड़ा। इसी तरह कपडों का जन्म हुआ, चाहे वे पेडों के पत्ते हों, जानवरों की खालें हों या बुने हुए कपडे। हमने कभी कपडों की कल्पना घरों के रूप मे नहीं की। है न? लेकिन वास्तव में वे यही तो हैं। जो लोग कहते हैं कि कपडे सिर्फ नग्न शरीर को ढकने के लिए हैं, बेवकूफी की बातें करते हैं, क्योंकि गरम जलवायु मे नग्न शरीर को ढकना लाभप्रद नहीं। और यदि इन्सान ठण्डी जलवायु में अपने शरीर को न ढकता तो वह अवश्य ही मर जाता।

पुराने जमाने मे सबसे पहले लोगों ने अवश्यमेव पेडों की वह लचीली छाल पहननी शुरू की जिससे वे अपनी झोंपडियाँ बनाते थे।

यह भी सम्भव है कि जो लम्बी घास वे पहनने के काम मे लाते थे, उसके अतिरिक्त उन्होंने पेडो के तनों की छाल को हाथ से मल-मलकर रस्सियाँ-सी बनानी शुरू कीं। यह अपने किस्म का पहला धागा रहा होगा। शायद वे इसका इस्तेमाल मछलियाँ मारने के लिए करते रहे हों। उन्होंने घास बुनकर रस्सियाँ भी बनाईं।

बाद मे, औरतें घास बुनकर टोकरियाँ बनाने लगीं, जैसा कि हमारे देश मे अब भी लाखों लोग करते हैं।

फिर उन आदिकालीन लोगों ने घास और पेडो की छाल बुन-बुनकर मोटा कपडा बुनना शुरू किया। मैडागास्कर के आदिवासी

अब भी घास के कपडे बनाते हैं। मालूम होता है कि इन्सान ने इस बात का पता लगाया कि कुछ खास पेडों के डठल से तैयार

होने वाले रेशों से ज्यादा मजबूत सूत तैयार होता है। इनमे से एक पौधा सन कहलाता है। अत जब वह फसल बोने लगा तो उसने अनाज के साथ-ही-साथ सन भी बोना शुरू किया।

हाथ से मलकर सूत बनाने के बदले कातकर सूत बनाया जाने लगा। इसके लिए पहले सन तैयार करना पडता था। इसका ढग कुछ इस तरह का था—पूरी तरह बढ़ जाने पर सन का पौधा जड़ से उखाड लिया जाता था, उसके बण्डल बनाये जाते थे और तब तक के लिए पानी में रख दिये जाते थे जब तक वे पिलपिले और मुलायम न हो जायँ। रेशे पौधो के रसदार तनों से अलग हो जाते थे। तब इनके बण्डलों को हाथ से पीट-पीटकर गुच्छी से अलग किया जाता था। फिर उन्हें छॉटकर सीधा कर लिया जाता था। इस तरह ये सूत बनाने के लिए तैयार हो जाते थे। सन तैयार करने के लिए अब भी यही तरीका बरता जा रहा है। रेशे निकालने के लिए हम भले ही मशीनों का इस्तेमाल कर लें, लेकिन इन पौधों को पानी मे उसी तरह सड़ाया जाता है।

पुराने जमाने में कताई आसान-सी चीज़ थी। सन के रेशे लम्बी-सी लाठी के सिरे पर लपेट लिये जाते थे। इसे पैवनी कहते थे। कातने वाला इसे अपनी बाईं बॉह के नीचे इस तरह रखता था कि उसका सिरा आगे को निकला रहे। कुछ रेशे निकालकर उन्हें सूत के रूप मे बँटकर लकड़ी की एक टेकुई पर लपेट दिया जाता था जो दाहिने हाथ में पकडी रहती थी। इसके घूमने से पैवनी से और रेशे निकलते थे और लम्बे सूत के रूप मे कतते जाते थे।

यह सूत पैवनी पर चढ़ जाता था और उसी पर या उसके खतम हो जाने पर दूसरी पैवनी पर सारा सूत चढा लिया जाता था।

सूत तैयार हो जाने के बाद करघा आया। सबसे पुराने

करघा लकडी के दो तख्तों का बना होता था। इनके बीच मे एक पाया लगाकर इन्हें जोड दिया जाता था। कुछ धागे इस पाये पर बॉध दिए जाते थे, जिन्हें ताना कहते है और दूसरे सिरे पर बॅधे वजन की वजह से ये अपनी जगह पर बने रहते थे।

पहले जुलाहा ऊन की गॉठ अपने हाथ मे पकडता था, चरखे मे बॅधे एक या दो धागे एक बार उठाकर अपने हाथ से वह बुनने वाले धागों को, जिन्हें बाना कहते हैं, एक तरफ से दूसरी तरफ ले जाता था। बाद मे इन धागों को एक तरफ से दूसरी तरफ ले जाने के लिए हड्डी या लकडी के समतल टुकडे का प्रयोग होने लगा। इस तरह के बहुत से पुराने जमाने के करघे मिले है जिनमे से कुछ मे सूत भी बॅधा था। लेकिन हमारे देश मे, और उसी तरह दुनिया के बहुत से दूसरे देशों मे भी किसान एव आदिवासी आज भी कातने और बुनने के यही तरीके बरतते हैं।

यह भी सम्भव है कि बच्चों और स्त्रियो ने पहले-पहल बुने हुए कपडे पहने जब कि आदमी जानवरों की खाल के कपडे ही पहनता था।

लैटिन भाषा मे सन को 'लाइनम' कहते है। 'लाइनम' से ही अंग्रेज़ी का 'लिनन' शब्द बना है, जो सन से बने कपडे को कहते थे।

[२]

पटसन के कपडे बनाने के लिए रंगीन धागों का इस्तेमाल काफी पहले ही होने लगा था। सबसे पहले जिन तीन रंगों का
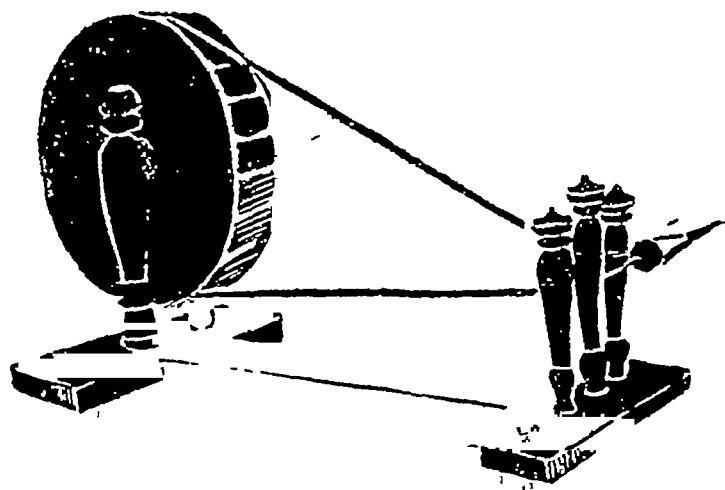
इस्तेमाल हुआ शायद नीले, लाल और पीले थे।

ये रंग पौधों से तैयार किये जाते थे। उदाहरणार्थ, यूरोप मे नीला रग नील से तैयार किया जाता था, पूर्व के देशों मे नील के पौधे से। लाल रंग 'लेडीज-चेडस्ट्रा' जैसे पौधों और भूमध्य-सागर के क्षेत्र मे कॉटेदार वलूत के पेड पर रहने वाले एक कीड़े से तैयार किया जाता था। टायर के निकट मिलने वाली एक 'शेल' मछली से चमकीला बैंगनी रग तैयार किया गया। पीला रग पेड़ों की छालों और क्रोकस के फूलों से तैयार किया गया। इन रगों को मिलाने से दूसरे रंग तैयार हुए।

रगीन धागों के आविष्कार के वाद कपडे पर डिज़ाइन वनाने सम्भव हो गए। शुरू-शुरू मे ये डिज़ाइन अवश्य ही सीधे-सादे धब्बों और धारियों के रूप मे ही थे। मिस्र, वेबीलोन और भारत की सभ्यताओं के जमाने में जुलाहे वहुत वढिया पटसन का कपडा वनाने लग गए थे, जिन पर सुनहले और दूसरे रगों का

कढाई का काम होता था। बुनाई और रफूगीरी की एक मिश्रित शैली भी निकली। मभी चीनी सिल्क बुनने वाले दुनिया मे वहुत प्रसिद्ध थे और वे अपना माल भारत लाते थे।

दो ईरानी साधु चीन से रेशम के कीडे के अण्डे एक खोखले बॉस मे छिपाकर कुस्तुन्तुनिया ले गए। इन अण्डों से कीडे निकले और उन्होंने रेशम के रेशे दिये। इस प्रकार यूरोप कच्चे रेशम से परिचित हो गया।

यूरोप के राजाओं ने रेशमी कपडा बनाने वाले जुलाहों का बड़ा सम्मान किया और उन्हें अपने दरवारों मे रखा। जुलाहे अपने कपडों में सभी तरह की तस्वीरे बनाने लगे, जिनमे राजा को शिकार करते, घुडसवारी करते या सिंहासन पर वैठे दिखाया जाता था। इस तरह यूरोप मे कपडे पर तस्वीरे बनाने की कला का प्रसार हुआ।
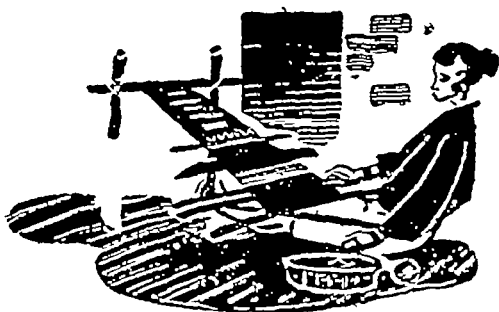
बारहवीं सदी मे फ्लेण्डर्स के जुलाहे कपडो पर काढी हुई इन तस्वीरों के लिए, जिन्हें 'टेपस्टरी' कहते है, वडे मशहूर हो गए।

हमारे अपने देश मे, शुरू-शुरू के चित्रो मे महीन रेशम की साडियों के चित्र मिलते है। वहुत पहले ही यहाँ हर तरह के कपडे बनने शुरू हो गए, जिनमे खूबसूरत डिजाइन की साडियाँ भी थीं। हमारी मलमल की शोहरत दूर-दूर तक फैली हुई थी और प्राचीन भारत के प्रत्येक ग्रामीण प्रजातन्त्र मे जुलाहे समाज का महत्त्वपूर्ण अग थे।

अधिकाश स्थानों पर चरखे ने बहुत पहले ही पैवनी और तकली का स्थान ले लिया।

तब कपास की, कपास के पौधों के फूँदीदार फल की खेती मिस्र, भारत और चीन में होने लगी। कई सदियों पहले ही इसका इस्तेमाल सन के साथ-ही-साथ किया जा चुका था। लेकिन सत्रहवीं सदी तक सूती कपडा मुख्यत रुई और सन, या पाश्चात्य देशों में मुख्यत सन और ऊन के मेल से ही बनाया जाता था।

[२]

प्रारम्भ मे मशीन पर आधारित इगलैण्ड मे मैंचेस्टर और लकाशायर मे जो सूती वस्त्र-उद्योग शुरू हुआ उसके लिए रुई भारत और अन्य पूर्वी देशों से ही जाती थी। इन मिलों में जो कपड़ा तैयार किया जाता था वह भी हमारे करघों से तैयार होने वाले कपडे की ही नकल था। पहले-पहल भारत से जाने वाले सूती एवं रेस के वस्त्रों के कारण बरतानिया के ऊन-उद्योग पर बुरा असर पडा। अत. अग्रेजों ने हमारे रुई के निर्यात पर भारी कर लगा दिया, ताकि उनके ऊनी वस्त्रोद्योग को भी मौका मिल सके। बाद में अंग्रेज भारत से ही कच्ची रुई का आयात करने लगे और मिलों से सूती कपड़े बनाकर हमें भेजने लगे। इस तरह हमारी दस्तकारी बरबाद हो गई और लाखों जुलाहे भूखों मर गए।

कपास के सुन्दर फूल ने मनुष्य-जाति को बडा सुख दिया है, लेकिन उसकी रुई से कपडा बनाने वालों को दु ख और कष्ट ही मिला।

यदि आप मुट्ठी-भर रोएँदार कपास हाथ मे लें तो आपको मालूम होगा कि उसमे कडे बीज हैं। रुई बाहर भेजने के पहले ये सारे बीज निकाल लिये जाते है। कभी यह काम हाथ ही से होता था। लेकिन यह बडी मेहनत का काम था। कपास से बिनौले निकालकर रुई अलग करना इतना कष्टदायक काम है कि यह गरीब से-गरीब लोगों के लिए छोड दिया जाता है। करोडों व्शी इसी की रोजी खाते है।

तब किसी अक्लमन्द ने इस कार्य के लिए एक मशीन निकाली। इसे 'जिन' कहते हैं। इसमे उँगलियों की तरह के लोहे के काँटे होते हैं और यह बडी जल्दी रुई से बिनौले छाँट-कर अलग कर देती है।
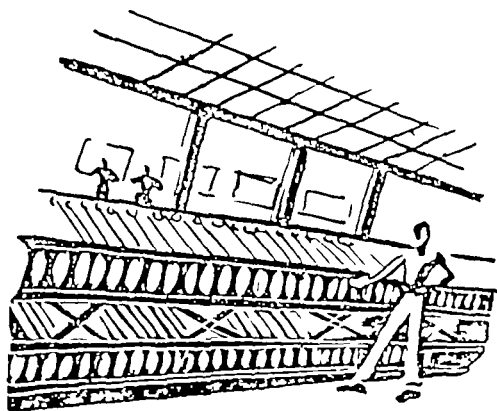
ये बिनौले बरबाद नहीं किये जाते। इनसे तेल निकाला जाता है। तेल निकालने के बाद जो खली बच जाती है उसे मवेशियों को खिलाते है।

रुई को बडी-बडी गाँठो मे बाँधकर कारखानो को भेजा जाता है। यहाँ इस रुई की सफाई होती है और इसका सूत निकालकर
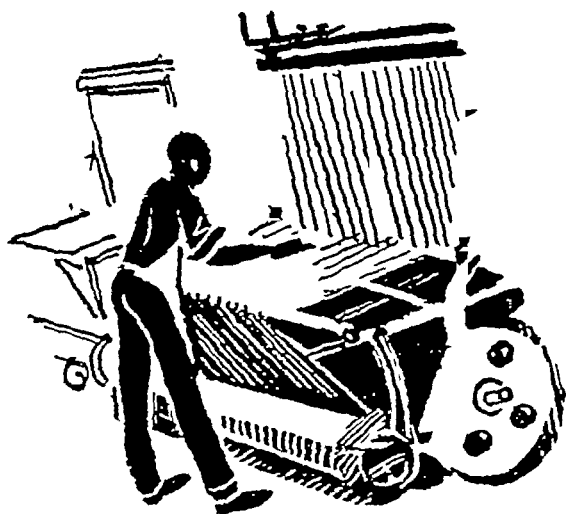
सके गोले बनाये जाते है। इसे कताई कहते है। सूत को चुनाई
कमरे में ले जाते है जहाँ और बडी-बडी विशालकाय मशीनें
गी रहती हैं। जिस सिद्धान्त पर ये मशीनें काम करती है वह
ह है—सूत को साथ-साथ अगल-बगल लगा दिया जाता है और
त की अंटी आगे-पीछे अन्दर-बाहर एक मिनट मे दो सौ बार
गती-जाती रहती है। अगर इस कपडे में कोई डिजाइन बनाना
ो तो उसके लिए अलग से सूत लगे रहते हैं। लेकिन कभी-कभी
पड़े को दूसरी मशीन में लगा दिया जाता है जो इस पर चित्र
गैर डिजाइन छाप देती है, जो लगभग उसी तरह छपता है
जेस तरह अख़बार छपते हैं।

[४]

सीधी-सी दीखने वाली यह पद्धति कभी इगलैण्ड और यूरोप
ी कपडे की मिलों मे काम करने वालों की जान ही निकाल डालती

थी। चार से आठ साल तक की उम्र के बच्चे काते हुए सूत के गोले बनाने के लिए एक आना रोज की मजदूरी पर रखे जाते थे। आठ से बारह साल तक के बच्चों को दो-तीन आने रोज़ मिलते थे। तेरह वर्ष की उम्र मे उन्हें कपडा बुनने के लिए छ आने रोज दिये जाते थे। अब हमारी कपडा-मिलों मे स्थिति उससे अच्छी है, क्योंकि बच्चों को वहाँ नियुक्त नहीं किया जाता। फिर भी कारखानों मे काम करने वाले मजदूरों को वेतन बहुत कम मिलता है, जबकि चीज़ों के दाम बढते जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त हमारी कई मिलों मे आज भी वही स्थिति जारी है जो सौ साल पहले इगलैड की मिलों मे थी। मिले अँधेरी और अस्वास्थ्यकर है। उनमे खिडकियाँ तक नहीं खोली जातीं और रुई का रोआ बडा कष्टदायक होता है। आदमी-औरते थोडे-से स्थान मे ठुँसे रहते हैं और उनसे घण्टों काम लिया जाता है। नवीनतम मशीनों का उपयोग हमारी मिलों मे नहीं किया जाता। दूसरे देशों से मशीनें मुश्किल से मिलती है, क्योंकि उन देशों मे इस्पात का उपयोग शस्त्रास्त्र बनाने के लिए ही पूरा नहीं पडता। विश्व मे शान्ति की किसी योजना की कमी के कारण मिल-मजदूरों की दुर्दशा होती है।

[५]

अत हम देखते है कि हमे कपडा बनाने वालो की दशा सुधारने के लिए कितना कुछ करना है।

लेकिन, शायद हमे कपडे पहनने मे भी ज्यादा अक्लमन्द बनना चाहिए। सबसे पहले हमे ऐसे ही कपडे पहनने चाहिएँ जो उस जलवायु के उपयुक्त हों जिसमे हम रहते है। हमारे पूर्वज हमसे कहीं कम कपडे पहनते थे, क्योंकि वे शरीर के लिए धूप और रोशनी को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझते थे। दुर्भाग्यवश पिछले दो सौ वर्ष से ब्रिटिश सरकार ने अपने कर्मचारियों को

कोट, पतलून और टाई पहनने की आज्ञा दी। पाश्चात्य विचार कुछ दूसरे ढग के हैं, क्योंकि ईसाई नग्न शरीर को बुरी नजर से देखते थे और उसे ढककर रखना चाहते थे। जब उन्होंने भारतीयों को सिर्फ कुरता और धोती पहनते देखा तो उन्होंने सोचा कि हम असभ्य हैं। वास्तव मे हमारे देश की गरम जलवायु मे सूट बूट पहनना बेवकूफी की-सी बात मालूम होती है। हमारे सम्पूर्ण इतिहास में लोग पटसन, मलमल या रेशम के ढीले-ढाले लटकते हुए कपड़े पहनते रहे हैं। आदमियों की पोशाक कुछ ऐसी 'स्कर्ट'(लहगे) की तरह की रही है जिसमे हवा भरी हो। औरतें पाजामे या सलवार पहनती थीं। स्कॉटलैंड में आदमी 'स्कर्ट' पहनते हैं जिसे 'किल्ट' कहते हैं। जैसा कि विद्वान् अंग्रेज कलाकार गिल ने कहा था, 'स्कर्ट' न तो विशेषत औरतों का ही पहनावा है और न पाजामा आदमियों का। वास्तव में यदि हम केवल इन बातों के बारे में सोचने लगे तो नग्न या अर्द्धनग्न आदमी हमें कपड़े पहने हुए की ही तरह लगेगा।

छठा अध्याय

नृत्य, संगीत और नाटक

[१]

अंग्रेजी के एक महान् लेखक श्री एच० जी० वेल्स ने एक बार एक पुस्तक लिखी थी—'टाइम मशीन'। और इस पुस्तक द्वारा हम इस विचार के अभ्यस्त हो गए है कि हम समय की यात्रा कराने वाली इस मशीन मे बैठकर उसी तरह सैर कर सकते है जैसे किसी मोटर कार मे। हम इसे चालू करते हैं और यह हमे हजारों वर्ष पहले के प्रागैतिहासिक काल का दिग्दर्शन कराने लगती है। पहले के अध्यायों मे हम यही करते आए है।

अब यदि हम वही काम फिर करे तो शायद हम किसी जगल के बीच जा पहुँचेगे और हमे अपने पुराने बन्दरों से मिलते-जुलते बालों से भरे शरीर वाले पूर्वज आग के चारो ओर कुछ अजीब-से भारी, बेढगे ढग से उछलते-कूदते नजर आएँगे। उस उछल-कूद मे शायद कुछ सामजस्य भी दिखाई पड़े। उछलते-कूदते समय पैरों की आवाज के साथ-ही साथ वे चीखते-चिल्लाते और तरह-तरह की आवाजें निकालते होगे। अब तक उन्होंने शब्दों मे बातचीत करना या गाना नहीं सीखा है।

आप पूछेंगे—आखिर वे जगल मे आग के चारों ओर उछल-कूदकर क्या कर रहे है? इसका उत्तर है—वे जादू कर रहे है। आसपास की हरेक चीज पर वे जादू डाल रहे है। वे समझते है कि यदि वे उस तरह उछलें-कूदे और जानवरो की तरह आवाज करें तो वायु और जल उनसे भयभीत हो जायँगे। हो सकता है कि वे भी कुछ उसी प्रकार की आन्तरिक भावना से प्रेरित हों जिससे

पूर्वज मुख्यत शिकारी थे। इन्हें भोजन के लिए या तो जगली जानवरों को मारना पडता था, नहीं तो वे खुद उनकी जान ले लेते। एक जमाना वह था जब वे अपने हाथों और दाँतों से ही जानवरों का शिकार करते थे। उसके बाद, आपको याद होगा, उन्होंने कुल्हाडियाँ तथा दूसरे हथियार बना लिये। लेकिन उसी समय मालूम होता है उन्होंने एक नये हथियार का आविष्कार किया—एक प्रकार के गुप्त हथियार का। वे जिन जानवरों का शिकार करते थे उन्हीं की खाल और पर पहनने लगे। किसी तरह इन्हें पहनकर वे अपने-आपको अधिक शक्तिशाली महसूस करते थे, क्योंकि वे समझते थे कि यदि हम किसी चीज की नकल करें तो हमको उस पर विजय पाने की शक्ति मिल जाती है।

अत शिकार के लिए निकलने से पहले वे शिकार की नकल का अभ्यास कर लेते थे। उनमे से कुछ लोग शिकारी का पार्ट करते थे और कुछ लोग शिकार होने वालों का। इस नकल मे हमेशा शिकारी ही जीतते थे।

असली जानवरों पर इस तरह के जादू-टोने का कतई असर नहीं पड सकता था, लेकिन हमारे भोंडे पूर्वज अवश्य ही उससे प्रभावित हुए। उन्हें विश्वास होने लगा कि इस तरह वे असली शिकार के समय जानवरों को मारने मे अवश्य ही सफल होंगे। विश्वास करने का अर्थ आधी लडाई जीत लेना है।

कुछ समय के बाद स्वाँग का यह अभ्यास अभिनय मे परिवर्तित हो गया और शिकार की भाव-भगिमा और शिकारी की अन्य क्रियाओं तथा आवाजों का विकास निश्चित ढाँचा बन गया। ये ढाँचे शिकार का बिलकुल सही-सही अभिनय तो न थे, लेकिन उससे इतने मिलते-जुलते अवश्य थे कि शिकार की ही तरह मालूम हो।

जादू-टोना करने की यह विचारधारा बाद के युगो मे जीवित

रही। और मालूम होता है कि जब भी लाग कुछ करने जा रहे हों तो उससे पहले कुछ इस तरह की चीज़ कर लेना अभ्यास-सा बन गया। उदाहरणार्थ, जब खेतों में बीज बोते थे तो इस तरह की तालमय क्रियाएँ एव मन्त्रोच्चार करके फसल उगाने के लिए वर्षा और धूप की प्रार्थना करते थे। उनका विश्वास था कि प्रत्येक चीज़ उसी तरह जीवित है जैसे वे जीते और साँस लेते हैं, और प्रत्येक वस्तु में उन्हें एक प्रकार की आत्मा का बोध होता था। हमारे पुराने शास्त्र वेदों मे वर्षा देने के लिए इन्द्रदेव, धूप देने के लिए सूर्य भगवान् तथा आँधी लाने वाले देवता रुद्र की चर्चा है। वास्तव में प्रत्येक नदी और पेड, पहाड व जीव-जन्तु की अलग-अलग आत्मा है। उसी तरह हम परियों, देवों, राक्षसों और भूतों की चर्चा करते हैं।

यह जादू-टोना और मन्त्र-तन्त्र नृत्य, गीत, नाटक, काव्य, चित्रकारी और शिल्प सभी कलाओं का श्रीगणेश थे।

और नृत्यकला अन्य सभी कलाओं की जननी है।

[२]

आदिकालीन जादू-टोने और मन्त्रोच्चार से लेकर आधुनिक 'बैले' तक, जैसा कि वह पाश्चात्य देशों मे आजकल नाचा जाता है, नृत्य-कला के विकास का निश्चित विवरण देना सम्भव नहीं है। लेकिन हमे आदिवासियों के नृत्यों के बारे मे, जिनकी कई जातियाँ हमारे बीच आज भी उसी तरह रहती हैं जैसे कि हमारे पूर्वज रहते थे, हमे काफी मालूम है। अतएव हम कुछ हद तक इस कला के विकास का पर्यवेक्षण कर सकते हैं।

एक लम्बे अरसे तक मालूम होता है नृत्य-कला केवल शिकार का स्वाँग एव अच्छी फसल की हार्दिक उत्कण्ठा का प्रदर्शन-मात्र बनी रही और उससे भी पहले के ज़माने मे ही, उन आदि-पुरुषों

ने नियत स्थान के भीतर ही नृत्य करते हुए अपने आपको भूमिति की रेखाओं मे सजाकर सुन्दर ढाँचे बना लिये। उसके साथ-ही-साथ चीख और चिल्लाहट शीघ्र ही गीत की लडियों मे परिणत हो गई—और सगीत का आरम्भ हुआ। हम अपने ही भरत-नाट्यम् और कथाकली जैसे पुराने नृत्यो मे देख सकते है कि गीत एव नृत्य कितनी खूबी से साथ-ही-साथ गुँथे हुए चलते है और नृत्य की भाव-भगिमाएँ कितनी गूढ और कलापूर्ण होती

है। हमारे नृत्यकारो के हाथ कमल के फूल की ही तरह बडी नज़ाकत से खुलते है और उनकी आँखो मे प्रेम और ईर्ष्या तथा घृणा के सभी भाव प्रतिबिम्बित हो जाते है। तब सम्भव है कि नृत्य और संगीत का विकास साथ-ही-साथ हुआ होगा। हो सकता है कि बहुत समय तक अन्न उपजाने वालो, बोने

वालों, फसल काटने वालों, टोकरियाँ ढोने वालों और लकड़ी काटने वालो की शारीरिक आवश्यकताओं एव भावनाओं का अभिनय ही उनके स्वाँगरूपी नृत्य का विषय रहा। गोंडों, संथालों और बजारों के नृत्य भावपूर्ण मुद्राओं मे उनकी जीवन-चर्या ही प्रतिबिम्बित करते है।

लेकिन प्राचीन कविता की ही भाँति, ये स्वाँग केवल जिन्दगी की नकल ही न थे, इनमे कल्पना का पुट देकर जीवन का पुन-

निर्माण किया जाता था। कल्पना के इस पुट मे हर्ष, विषाद, विजय, उल्लास, आशा और भय सभी भाव आ जाते थे। ये भाव एव भावनाएँ उस समय और भी महत्त्वपूर्ण मालूम होते है जब विशेषत कई नाचने वाले एक साथ मिलकर ढोलक की ढम-ढम पर एक ही प्रकार का भाव प्रकट करते हुए एक ही प्रकार की ध्वनि के साथ नृत्य करते हैं। इस प्रकार नृत्य मे कल्पना का जो पुट आया वह कभी-कभी जीवन से विलग कोई चीज नहीं बल्कि उसी का अग मालूम होता है, जो एक साथ शिकार करते हुए या खेत जोतते हुए लोगों की भाव-भगिमाओं मे प्रदर्शित होता है।

नृत्य का मुख्य अश हाव-भाव और सुन्दर मुद्राएँ ही है, लेकिन नृत्य की विभिन्न शैलियों का विकास प्रत्येक देश मे अलग-अलग हुआ। प्रत्येक देश की जलवायु, फसल उगाने के लिए वहाँ काम मे आने वाले औजार, लोगों द्वारा पहने जाने वाले कपडे और गीतों की भाषा, सभी के सामजस्य से प्रत्येक देश मे प्रदर्शन के भिन्न-भिन्न एव विशिष्ट ढगों का विकास हुआ। उदाहरणार्थ, कुछ भाव-मुद्राएँ तो साधारण दैनिक कार्यों की स्पष्ट नकल है, जैसे कि हमारे पहाडी नृत्य मे हँसिये से फसल काटने की मुद्रा। दूसरे नृत्यों मे ये प्रतीक अधिक अप्रत्यक्ष है, जैसे कि संथाल नृत्य मे। इसमे पुरुष एव स्त्रियाँ एक दूसरे की ओर आती है, जैसे कि एक-

दूसरे को बाँहों में भर लेना चाहते हों। लेकिन सभी लोक-नृत्यों में हम अब भी उस जादू-टोने का रूप देख सकते हैं, जैसे कि

नाचने वाले जोर-जोर से धरती पर पैर मारकर उससे अपनी इच्छा पूरी करा लेते हैं।

[३]

जैसे पुरानी जातियाँ वडे गाँवों और नगरों मे वसने लगीं उसके साथ ही नृत्य की शैलियों मे भी परिवर्तन हुआ। पुराने ढग के नृत्य अब भी प्रचलित थे, लेकिन उन्हें नया अर्थ दिया गया और वे पहले से दुरूह हो गए। प्राचीन भारत मे शिव भगवान् की प्रतिष्ठापना नृत्य-सम्राट् नटराज के रूप मे करने का गूढ अर्थ था। हमारे ऋषियों का विचार था कि मनुष्य इस दुनिया मे बार-बार जन्म लेता है और यह जीवन क्रम महादेव के ताण्डव द्वारा ही सचलित होता है, मानो सारी दुनिया नृत्य करते हुए भगवान् का ही रूप हो।

यदि आप नृत्य-मुद्रा मे नटराज शिव के चित्र पर नजर डालें तो आपकी समझ मे उस स्तुति का अर्थ आ जायगा जिसमे उनके विभिन्न चिह्नों का वर्णन है

"हे भगवान शिव, तुम्हारे एक हाथ मे पवित्र डमरू है। इस हाथ द्वारा ही तुमने सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन किया है। तुम्हारा ऊपर उठा हुआ हाथ जड और चेतन दोनो की रक्षा करता है। तुम्हारे एक हाथ मे अग्नि है जिससे तुम ससार के रूप को बदलते रहते हो, तुम्हारा पवित्र पैर जमीन पर जमा है और जीवन-मृत्यु के सघर्ष मे रत मनुष्य की आत्मा को सहारा देता है। तुम्हारा उठा हुआ दूसरा पैर उन लोगो को मोक्ष और स्थायी शान्ति प्रदान करता है जो तुम्हारे पास पहुँच पाते है। तुम्हारी नृत्य-मुद्रा तुम्हारे इन महान पाँच कार्यों की ओर सकेत करती है।"

[४]

गाँवो के आविर्भाव के साथ ही मन्दिरो देवालयो मे भगवान को रिझाने के लिए नृत्य-अभिनय प्रारम्भ हुआ। इनके साथ ही

मन्त्रोच्चारण तथा कथाओं का पाठ करने की प्रथा भी शुरू हुई और इसी से बाद में नाटक का जन्म हुआ। रामायण तथा महाभारत की महान् कथाएँ पुजारियों द्वारा मन्दिरों में सुनाई जाती थीं। नर्तक और अभिनेता इन कथाओं का सक्रिय रूप अपने नृत्य तथा अभिनय द्वारा प्रस्तुत करते थे। बगाल का कीर्तन बहुत-कुछ अशों में इसी पद्धति का प्रतीक है।

परन्तु ईसा मसीह के दो-तीन सौ वर्ष बाद तक नृत्य तथा नाट्य-कला का काफी विकास हुआ और भारत मे गुप्तकाल मे बहुत-कुछ अशों मे उन्हें पूर्णता भी प्राप्त हुई। ईसा मसीह के बाद पॉचवीं शताब्दी के पूर्व भरत-नाट्य-शास्त्र लिखा गया, जिसमे नृत्य और अभिनय की अवस्थाओं तथा उनके द्वारा विभिन्न प्रकार की भावनाओं के प्रदर्शन का व्यापक विश्लेषण किया गया है। इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि आज से एक हजार वर्ष पूर्व भी भारत में इन कलाओं का पर्याप्त विकास हो चुका था।

परन्तु विदेशी आक्रमणों से यह विकास अवरुद्ध हो गया। विशेष रूप से इसका असर उत्तर-भारत मे पडा, परन्तु दक्षिण मे इन शास्त्रों का विकास होता रहा। उदाहरणार्थ, तजौर में भरतनाट्यम् जारी रहा। शास्त्रीय नृत्य-कला कितनी सुन्दर हो सकती है उसका अनुभव उस नृत्य को देखकर किया जा सकता है। मलाबार का कथाकली नृत्य भी, जो आजकल प्रचलित है, उतना ही कलापूर्ण है और हर प्रकार की मुद्राओं तथा भावनाओं को प्रदर्शित करता है।

जब भारत से हिन्दू जावा और बाली गये तो वे वहाँ भी इस कला को ले गए। वहाँ जाकर भारतीय नृत्य कला मे उन द्वीपों के लोगों के रहन-सहन के अनुसार उन्होंने परिवर्तन भी किये।

चीन मे भी नृत्य, नाटक तथा सगीत का इसी प्रकार विकास

हुआ। वहाँ प्राचीन काल से चले आते हुए 'द्वैधालय प्रणाली' के नृत्य मे इतने परिवर्तन हुए कि उन शास्त्रों को जीवित रखने के लिए नर्तक अथवा अभिनेता को अपनी सन्तान को मृत्यु के पूर्व उन कलाओं मे पारगत कर देना पडता था। चीन मे भी नाटक और नृत्य का निकट सम्बन्ध बना रहा। सगीत भी उसका एक आवश्यक अग था। इसे आजकल 'ऑपेरा' कहते है।

पूर्वी क्षेत्रो के लोगों की धार्मिक भावनाओं मे बहुत काल तक परिवर्तन नहीं हुआ, और यदि हुआ भी तो बहुत थोडा। फल-स्वरूप, इन क्षेत्रों मे नृत्य-कला की जो धारा शुरू हुई वह आज भी जारी है। यूरोपीय सस्कृति के प्रभाव के कारण पिछले दो सौ वर्षों मे इस नृत्य-परम्परा मे थोडा-बहुत अन्तर हुआ है।

[६]

पश्चिमी देशों मे जादू-टोने व नृत्य-कला का विकास भिन्न परिस्थितियों मे हुआ, जिसने उन्नति करके दुरूह नाटक का रूप धारण कर लिया।

वहाँ गाँवो का महत्त्व बहुत दिनो तक न रहा। शहरो का प्रादुर्भाव जल्दी हुआ, जहाँ नवीन पद्धति की समाज-रचना हुई। इसका

असर नृत्य, नाटकों आदि पर भी पडा और 'हीरो' (नायक) की कल्पना की गई। इस 'हीरो' के बारे में यह कहा गया कि वह संसार को नया ज्ञान, नई बातें, बताएगा। इस विचार का स्पष्ट अर्थ हुआ कि वह ईश्वर की शक्ति को न मानता था और वह 'हीरो' प्रोमेथियस था जो नई खोजें और नई पद्धतियाँ निकालता था। फलस्वरूप, उसे देवतागण कैद कर देते है और प्रोमेथियस उनसे छुटकारा पाने के लिए सघर्ष करता है।

यूनानियों की अपने देवताओं के बारे मे अन्य अनेक कथाएँ भी हैं। ये देवता प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के, अज्ञात भाग्य के, जो इन्सान की जिन्दगी बनाता या बिगाडता है, प्रतीक समझे जाते थे। यूनान के प्राय सभी नाटकों में पात्रों के कार्य प्रकृति की शक्ति से प्रभावित रहते है तथा उनका परिणाम भाग्य पर निर्भर समझा जाता है।

सभी यूनानी नाटकों में इस अज्ञात भाग्य (प्रकृति की शक्ति) का इन्सान के कृत्यों पर सदा प्रभाव पडता रहता है। मालूम होता है, नाटक के पात्र वही कर रहे है जो उनके भाग्य मे लिखा है। जब परदा उठता है तो मच का दृश्य देखकर हमारा दिल प्यार और दया से भर जाता है, मानो स्त्री-पुरुषों को कष्ट भोगते हुए देखकर हमारा दिल पसीज गया हो। ऐसा लगता है कि यूनानियों ने सभी चीज़ों पर विजय पा ली थी, लेकिन कुछ अज्ञात, अदृश्य शक्तियों से वे सदा भयभीत रहे।

यूनानियों की ये महान् परम्पराएँ पश्चिमी यूरोप मे भी फैलीं। बाद के युगों मे तो केवल प्रमुख विचारों मे ही परिवर्तन हुआ। यहाँ ईसा मसीह को दुखियों का सहायक तथा शैतान को बुरे कार्यों के लिए उत्तेजित करने वाला माना गया। यहाँ के गिरजाघरों मे होने वाले नाटकों मे, जिन्हें 'नैतिकता-नाटक' (Morality Plays) कहते हैं, इसी आधार पर अच्छे और

बुरे कार्यों का अन्तर्द्वन्द्व प्रकट किया जाता था।

बाद मे विज्ञान और अन्वेषण का समय आया जिसे पुन-रुत्थान-काल भी कहते है। उस समय थियेटर मे एक ओर 'भाग्य' के विषय का नाटकों मे समावेश होने लगा। इस काल मे नाटकों के विषय बदल गए और मनुष्य के अन्दर छिपी हुई उन बुराइयों को नाटकों मे दिखलाया गया जो व्यक्ति-व्यक्ति की होड के समय सामने आती है। विश्व के महान् नाटककार शेक्सपियर ने अपने नाटकों के पात्रों मे इन्हीं बुराइयो का चित्रण किया है।

मशीन-युग मे 'भाग्य' एक बार फिर 'परिवर्तित' हो गया। साथ ही व्यापार-वाणिज्य क्षेत्र की बुराइयों को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना आवश्यक हो गया। फलस्वरूप साहित्य पर उनका प्रभाव पडा। क्रय-विक्रय मे किस प्रकार बेईमानी की जाती है, पूँजी का किस प्रकार दुरुपयोग होता है, आदि पर नाटक, उपन्यास तथा कविताएँ लिखी गई। इस प्रकार १६वी से १७वीं सदी के दरम्यान अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक नाटक लिखे गए।

नृत्य, सगीत तथा नाटको पर १४वीं से १७वी शताब्दी तक केवल राजाओ, उनके दरबारियो तथा पूँजीपतियो का आधिपत्य था। उन्हें प्रस्तुत करने वाले या तो अच्छे घरानो के लोग होते थे या पेशेवर नर्तक व अभिनेता। थियेटरों मे नृत्य, सगीत तथा वार्ता का प्राय बराबर स्थान रहा करता था। लेकिन गिरजाघरो मे सगीत का विकास बराबर जारी रहा और आज यह संगीत यूरोपवासियो की विश्व-सस्कृति को बहुत बडी देन है।

१७वीं और १८वीं शताब्दियो मे 'बैले' को काफी पूर्णता प्राप्त हुई। इसका सबसे अधिक श्रेय नोवेरे नामक व्यक्ति को है। उसका खयाल था कि यह कला केवल इसीलिए शैशवकाल मे रही क्योकि इसका प्रभाव सीमित रहा है। आतिशबाजी के प्रभाव की भाँति दर्शकों का मनोरंजन करना-मात्र इसका ध्येय था। अधुनतम नाटको

की ही भाँति 'बैले' भी प्रेरणा देने और दर्शकों के हृदय को प्रभावित करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। मर्मस्पर्शिता की इसकी शक्ति में कभी किसी ने सन्देह नहीं किया।

तब से, अगले दो सौ वर्ष तक हम एक नई कला को उन्नति करते देखते हैं, जो अपनी मोहिनी शक्ति के लिए विश्व की श्रेष्ठतम कलाओं में गिनी जाती है। इटली, रूस और पश्चिमी यूरोप में कई प्रतिभावान् पुरुषों और स्त्रियों ने सुन्दर नृत्य प्रस्तुत किये और यह मोहक कला दिनों-दिन पहले से भी अधिक तरक्की कर रही है।

[७]

सम्भवत हमारे अपने देश में हमें पश्चिम के रंग-मंच पर नाटक प्रस्तुत करने की कला को अपनाकर अपनी परम्परा से चली आई भाव-भंगिमा को नया रूप देना होगा। इसके साथ ही अपने नये जीवन और उसकी नई अनुभूतियों को प्रकट करने के

लिए हमे शायद नई भाव-भगिमाएँ निकालनी पडेगी और तव हमारे पास 'वैले' सगीत और थियेटर की एक नई कला होगी।

हमे नोवेरे के शब्द याद रखने चाहिए, जिसने कहा था—"भली भाँति प्रस्तुत किया गया 'वैले' विश्व के सभी राष्ट्रों के आन्तरिक भावो, तौर-तरीको, रस्म-रिवाज, सस्कारों और आदतों का सजीव चित्र होता है। इसमे छोटी छोटी बातों को भी पूर्णत स्पष्ट करके सामने ला रखने और आँखो के रास्ते आत्मा तक पहुँचने की शक्ति होनी चाहिए।"

यह नाट्य-सम्बन्धी सभी कलाओ के वारे मे सत्य है।
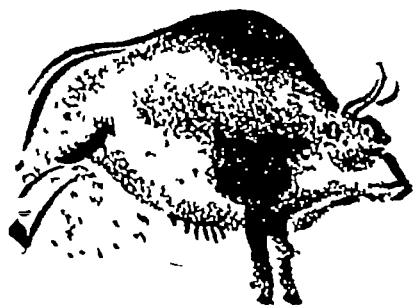
सातवाँ अध्याय

मकान, चित्र और मूर्तियाँ बनाने की कला

[१]

यदि हम फिर उस काल-यन्त्र (टाइम-मशीन) मे बैठकर अतीत की यात्रा करने को निकले, जैसा कि हमने पिछले अध्याय मे किया था, तो हम शायद पहाड़ों पर स्थित उन कन्दराओं मे से किसी एक मे जा पहुँचेंगे जिनमे आदिकालीन मनुष्य रहते थे। हजारों साल पहले के तैयार किये हुए इन घरों मे हमे सभी तरह की चीजें मिलेंगी—पत्थर के औजार, सींग, हड्डियाँ और अतीत काल के उन गुफावासियों के खाने मे से बच रहे भूने हुए जानवरों के पैर और बाकी टुकड़े। और इन गुफाओं मे से कुछ की दीवारों पर हमे बैलों, घोड़ों, हिरनों और चिड़ियों के चित्र मिलेंगे।

ये चित्र वस्तुत उस जादू-टोने का ही नमूना है। इन जानवरों को लक्ष्य करके जो तीर खींचे हुए हैं, मानो उनको बेध रहे हों, उनसे मालूम होता है कि हमारे आदिकालीन पूर्वज शिकार के मर जाने के पहले ही जानवरों को मारने की कोशिश करते थे—उसी तरह जैसे वे शिकार के समय उन्हें मारने का स्वॉग
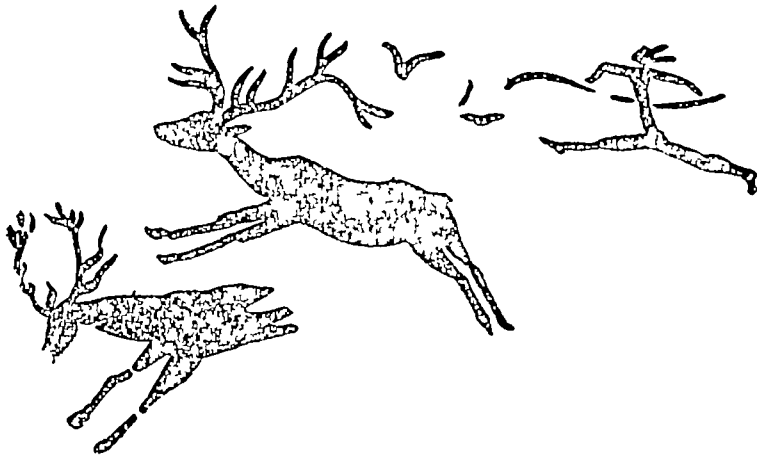
करते थे। इस प्रकार आदिकालीन चित्र और चित्रकारी आदि-कालीन नृत्य, नाटक और सगीत की ही भाँति, भोजन इकट्ठा करने के हित शिकार के लिए आवश्यक साहस एकत्र करने की आन्तरिक भावना से ही प्रेरित होकर उत्पन्न हुए।

बाद में, यह भावना विकसित होकर स्वान्त सुखाय काम करने और चीजें बनाने की प्रेरणा मे परिवर्तित हो गई।

और उसके भी बाद काम का बँटवारा शुरू हुआ। कबीले के शक्तिशाली पुरुष तो शिकार पर जाते थे और कमजोर व्यक्ति या अन्य जो जिस किसी विशेष कार्य मे अधिक कुशल होते थे, चीजें बनाते थे।

जो भी हो, गुफाओं की दीवारों पर खरोंचे हुए जो चित्र हमे मिलते हैं, अत्यन्त ही तीखे और महत्त्वपूर्ण हैं। जादू-भरा चित्र, जो धूप और वर्षा पर नियन्त्रण कर अच्छी फसल दे सके या शिकार को मदद दे, आश्चर्यजनक होना ही चाहिए था। यह चित्र ही तो गुफावासियों को सभी कार्य सफलतापूर्वक करने की

प्रेरणा देता था। इसकी सम्भावना भी है कि आदिकालीन इन्सान ने जो कुशलता प्राप्त कर ली थी उसके अतिरिक्त वह एक नई शक्ति का भी उपयोग करने लगा। यह थी कल्पना-शक्ति। इससे चीजों के प्रतिरूप केवल उनसे मिलते-जुलते ही न रहकर उससे अधिक हो गए। ये मूर्तियों के चित्र दर्शक के हृदय पर गूढ प्रभाव डालते हैं। दर्शकों को ये वास्तव मे इतना प्रभावित कर देते हैं कि चित्र देखने के वाद ही उसे वाकी चीजें भी याद आने लगती हैं। इन चित्रों की रेखाएँ इतनी स्पष्ट हैं कि ऐसा लगता है मानो वे गा रही हों।

जो चित्र उत्तर प्रदेश मे मिरजापुर जिले की प्रागैतिहासिक गुफाओं मे मिले है, या स्पेन की अल्टामारा गुफाओं मे या अन्य स्थानों पर, उन्हें देखकर मालूम होता है कि आदिकालीन मनुष्य में दौडते, लात मारते या भाला खाते हुए जानवरों की गति पकडने की कितनी असाधारण क्षमता थी।

जिन गुफाओं मे ये चित्र मिले हैं, उनमें से कुछ वहुत ही अँधेरी हैं। अत उनमे चमकीले, लाल, पीले या गहरे भूरे रंग का इस्तेमाल किया गया है। स्पष्टता मे रंग पत्थर के चूरे से ही वनाए जाते थे। इसे समतल पत्थर पर रखकर उसमें लासा मिला दिया जाता था। व्रुश गिलहरियों के मुलायम वालों से वने होते थे, जैसे कि वे आज भी वनाये जाते हैं।

[२]

हिम-युग के अन्त में, जव इन्सान गुफाएँ छोडकर घास-पात, जानवरों की खाल या वाँस और गारे के घर वनाने लगा, इन चित्रों में भी परिवर्तन हुआ। पुराने जमाने में इन्सान आज से कहीं अधिक घर और चित्र वनाता तथा अपने आसपास आसानी से मिल जाने वाली चीजों, लकड़ी और पत्थर आदि, पर कारीगरी करता था। उन मकानों में सजावट के लिए रंगों से वनाये

गए चित्रों तथा बडी इमारतों और देव-देवालयों के निर्माण मे ही उस चीज का विकास हुआ जिसे हम कला कहते है।

आइए, अब हम देखे कि घर किस तरह बनाये जाते थे।

[२]

गुफाओं, पृथ्वी तथा पेडों की खोलों के अतिरिक्त हमारे देश मे पेडों के तनों और डालियों का तम्बू जैसा ढाँचा बनाकर मकान बनाये जाते थे। इस ढाँचे का बाहरी भाग झाडियों, टहनियो, पत्तों वगैरह से ढका रहता था। मिट्टी या गारे के 'प्लास्टर' से यह अपने स्थान पर टिका रहता था। हजारो गाँवों मे इस तरह की झोपडियाँ आज भी बनाई जाती है। विश्व के विभिन्न भागों मे, जलवायु के अनुसार ये झोंपडियाँ गोल, लम्बी या चौकोर होती थीं। सबसे बडी झोंपडी मुखिया की होती थी और इसकी दीवारों पर मिट्टी या गारे का प्लास्टर होता था। ये लाल या पीली रँगी रहती थीं और इन पर सफेद या लाल रगो मे तरह तरह के चित्र बने रहते थे।

जब इन्सान भोजन सग्रह करने की स्थिति से उन्नति कर खाद्यान्न-उत्पादन की स्थिति मे पहुँचा तो वह गाँवो मे रहने लगा। जैसा आप पहले के अध्यायो मे पढ चुके है, सबसे पहले गाँव नील, दजला, फरात, सिन्ध और ह्वागहो जैसी बडी नदियो की घाटियों मे ही बसाये गए। इन क्षेत्रों मे ज्यादा जगल न थे और लकडी कम ही मिलती थी, लेकिन मिट्टी और गारा यहाँ बहुतायत से मिलता था। अत इन्सान ने रहने के लिए इन्ही जगहो को चुना।

मोहेनजोदडो और हडप्पा मे दीवारे और ईंट बनाने के लिए

मिट्टी और गारे का ही इस्तेमाल होता था। मेसोपोटामिया के एक पुराने नगर सूसा मे स्पष्टत गॉव के चारों ओर दीवार बनाने के लिए मिट्टी का ही इस्तेमाल किया जाता था।

मालूम होता है कि उस जमाने के लोगों को भी शीघ्र ही पता चल गया कि बाढ आदि के खतरे के कारण नदियों के किनारे घर बनाना अच्छा नहीं रहता। अत लोगों ने नदी के किनारे से खोदकर मिट्टी निकालने और उसके चौकोर ठोके बनाने का तरीका निकाला, जिन्हें नदी के किनारे पर ही सूर्य के ताप मे पकने और मजबूत बनने के लिए छोड दिया जाता था। ये हमारी पहली ईंटें थीं।

बाद में सिन्धु-घाटी के लोगों और बेबीलोन के निर्माताओं ने आग में ईंटें पकाना सीख लिया, जिससे मकान खराब मौसम मे अधिक टिक सकें। वे लोग इन पक्की ईंटों को गारे या चूने और एक तरह के प्लास्टर से जोडते थे। मोहेनजोदडो मे बनाये हुए दुरूह भवन और बेबीलोन के महलों की मजिलें देखकर मालूम होता है कि अपनी जलवायु के अनुरूप अच्छे घर बनाने की कला मे हमने उनसे बहुत ज्यादा तरक्की नहीं की है। इन अतीतकालीन लोगों के बनाये हुए कुछ घडे और बरतन तथा मिट्टी व धातु की मूर्तियॉ तो अनुपम सौन्दर्यशाली हैं। बरतनों या अपने मृतकों की कब्रो पर उन्होंने जो चित्र बनाए उनसे साबित होता है कि उन मध्य युगों के निवासियों की कल्पना-शक्ति अत्यन्त उर्वरा थी।

[४]

हमारे देश मे मन्दिर और देवालय प्रधानत किसान के अपने रहने के घरों के ढग पर ही बनाये जाते थे। आज भी बड़े मन्दिरों मे आप देखेंगे कि मन्दिर के अन्दर एक वर्गाकार कमरा होता है जिसमे देवमूर्ति प्रतिष्ठापित रहती है। उसके

चारों ओर बरामदे होते हैं। मन्दिरों मे पत्थर का प्रयोग होने से उनका रूप और निखरने लगा। इन्हें बनाने वाले पत्थर के इन भवनों को केवल पत्थर के ठोके के ही रूप मे नहीं छोडना चाहते थे। उन्होंने खुरदरे पत्थरों के किनारे रगड-रगडकर चिकने बनाये और उन पर उन देवताओ की मूर्तियाँ खोदीं जिनको मन्दिर मे प्रतिष्ठापित किया गया था।

हमारे ही देश की भाँति मिस्र, यूनान और चीन मे भी बडे-बडे देवालयों का निर्माण हुआ।

यूनान मे इनमे से सर्वाधिक प्रसिद्ध देवालयों मे पार्थेनन का मन्दिर है। यूनान की एथेन नामक देवी के सम्मान में इसका निर्माण किया गया था। यूनान की राजधानी एथेन्स का नामकरण भी इसी देवी के नाम पर किया गया था। एथेन्स की पहाडियो पर स्थित इस मन्दिर के गौरवशाली खण्डहरो मे कई मूर्तियाँ और उन मन्दिरों के प्रख्यात शिल्पकारों की कला के नमूने आज भी दिखाई देते है जो कभी इस वैभवशाली देवालय की शोभा बढाते होंगे। इनमे से कई मूर्तियों ने बाद मे शिल्पकारों को प्रेरणा दी।

उदाहरणार्थ, रोमनो ने यूनान को जीत लिया और उन दिनों ज्ञात लगभग सम्पूर्ण विश्व पर राज्य करते रहे। लेकिन यूनानियों ने उन पर भी आध्यात्मिक विजय पाई। उन्होंने यूनानी भवनो की नकल की और यूनानी ढग पर शिल्पकारी करना सीखा। उनके भवन यूनानियों से अधिक सादे लेकिन ठोस होते थे।
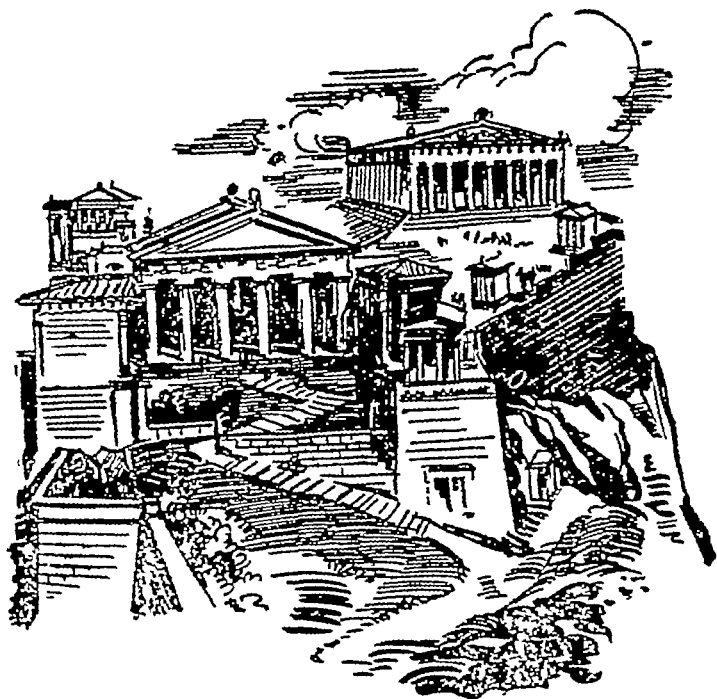
यूनानी छत वनाने के लिए समतल पत्थर की सिलों और लकड़ के शहतीरों का इस्तेमाल करते थे। रोमनों ने मेहराव वनाने शुरू किये। ये मेहराव वडे सादे मालूम होते हैं। लेकिन यदि आप देखे कि पत्थर किस तरह ऊपर-नीचे और दायें-वायें टिके हुए हैं और गिरते नहीं, तो आपको अन्दाज होगा कि इतना भार सँभालने के लिए कोई भी भवन वनाना वडा कठिन काम है। वौद्ध-काल मे स्वय हमारे पूर्वजों ने गुम्वज वनाकर दूसरों का पथ-प्रदर्शन किया और जिस ढंग से गुम्वज का विकास हुआ, जैसा कि रोम में सेंट पीटर के गिरजे या लन्दन के सेंट पाल के गिरजाघर मे, वह वडा मनोरजक इतिहास है।

जिस तरह मोहेनजोदडो के लोग सार्वजनिक स्नान-गृह और हमाम बनाना जानते थे, उसी तरह रोमन आग की भट्टियों की गरम हवा से पूरी इमारत को गरम करना जानते थे। घर को गरम करने की इस प्रणाली मे गरम हवा मिट्टी या पत्थर की नलियो से निकलती थी। प्राचीन भारतवासियो की ही तरह रोमन भी तालाव बनाना और प्रत्येक घर मे स्नान गृह तक पानी पहुँचाना जानते थे।

शुरू-शुरू के मकान एक मजिले ही होते थे, जैसा कि गॉव मे अधिकाशत आज भी दिखाई देता है। बाद मे जनसख्या मे वृद्धि होने के साथ-ही-साथ नगर निर्मित हुए और लोग एक मजिल पर दूसरी मजिल बनाने लगे। आज तो न्यूयार्क और मास्को मे गगनचुम्बी इमारते बनती है। इस तरह हजारों लोग एक ही घर मे रह सकते है। उसी तरह बॉस की सीढियों के बदले पहले लकडी की सीढियों का प्रयोग होने लगा, फिर पत्थर की सीढियों का और अब बिजली की लिफ्ट का, जो हमे इस तरह ऊपर ले जाती है मानो हम किसी जादू के कालीन पर बैठकर जा रहे हो। खिडकियाँ, चिमनियाँ और आराम देने वाली अन्य चीजो मे भी सदियो से निरन्तर विकास होता आया है। इन सभी चीजों के विकास मे जलवायु पहली विचारणीय
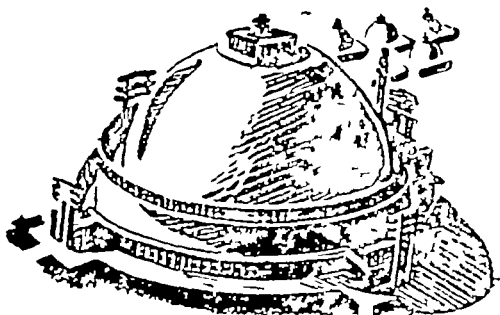
ै और आवश्यक सामग्री दूसरी। रेन जैसे कई निर्मा-
ातिभा के फलस्वरूप ही, जिसने १६६६ ई० की आग मे

भस्म हो जाने के पश्चात् लन्दन का पुनर्निर्माण किया, मकान, सार्वजनिक इमारतों और सुयोजित नगरों का यह विकास हुआ।

[५]

उसी तरह ससार के इतिहास मे कई अन्य प्रतिभावान् व्यक्ति हुए हैं जो चित्रकारी एव शिल्पकला के क्षेत्र मे अमर रहेंगे। लियोनार्दो दा विंसी जैसा महान् व्यक्ति हुआ है जो न केवल अन्तरतम मानव-अनुभूतियों को प्रकट करने वाले सुन्दर चित्र ही बना सकता था, बल्कि जिसने कई नये विज्ञानों को जन्म दिया। लियोनार्दो ने ही पहले-पहल गुब्बारे की बात सोची थी जो बाद मे बढकर विमान बना। विभिन्न मॉसपेशियों के बीच क्या अन्तर है, उसने इसका पता लगाने के लिए शवों की चीर-फाड की। उसने चित्रकारी व शिल्प-कला को यथार्थवाद का पुट दिया। अन्य महान् व्यक्तियों ने उसी के सबक दुहराए। वे बडी-बडी तस्वीरों मे, जो मुख्यत गिरजाघरों मे काम आती थीं, कई समुदायों को एक साथ चित्रित करने की 'टेकनीक' का विकास करते रहे। माइकल एजिलो जैसे शिल्पकारों ने, जिसकी रोम मे बनी हजरत मूसा की मूर्ति कला के इतिहास मे विशिष्ट स्थान रखती है, उसी प्रतिभा व अध्यवसाय का परिचय दिया।

इटली मे वास्तु-कला और चित्रकारी दोनो पुनरुत्थान काल में खूब फूली फलीं। वहीं से ये यूरोप के दूसरे देशो मे पहुँचीं—विशेषत फ्रास मे, जहॉ पेरिस जैसे सुन्दर नगर बनाये गए और वर्सेल्स का महल और शार्त का गिरजाघर। वहॉ कई महान चित्रकार और शिल्पकला-विशारद हुए। प्रत्येक कलाकार ने राजाओं, वीर नेताओं व साधारण जनता तथा उनकी अनुभूतियों को चित्रित करने मे कुछ नई देन दी। प्रत्येक युग मे कला के पाठ सघर्परत मनुष्य को अधिकाधिक सतोप एव प्रेरणा देते आए है। आज भी फ्रास के कलाकार विश्व के कलाकारों

के गुरु माने जाते हैं ।

लगभग दो सौ साल पहले तक चित्रकारी, शिल्प-कला, लकडी व लोहे का काम, सब वास्तु-कला के ही अग थे । लेकिन ज्ञान के प्रसार के साथ-ही-साथ प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपना अपना काम कुशलतापूर्वक करने की आवश्यकता पैदा हुई और विभिन्न कलाओं का एक दूसरी से स्वतन्त्र अस्तित्व वन गया । एक प्रकार से यह अच्छा ही था, क्योंकि लोग विभिन्न प्रकार के रूपों, रगों और निर्माण-शैलियों के प्रयोग करके अपनी कला-कृतियों को अधिकाधिक गूढ एव सुन्दर वना सकते थे । उदाहरणार्थ, विज्ञान ने चित्रकारी के विकास मे वडा योग दिया । भौतिक शास्त्रियों ने कहा कि विभिन्न रगों के प्रकाश में चीजें भिन्न-भिन्न दिखाई पडती हैं । अत चित्रकारों ने प्रकाश के प्रभाव को ध्यान मे रखकर चित्रों मे रग भरने की कोशिश की । वाद में फ्रासीसी कलाकार सिजेन ने वाहरी प्रकाश के पीछे ठोस वस्तुओं के अन्तराल को चित्रित करने की कोशिश की ।

[६]

वास्तु-कला एव अन्य कलाओं की एकता हमारे देश मे कहीं अधिक स्पष्ट है ।

ईसा से सदियों पहले ही भवन-निर्माण का स्थान, जो केवल ईंट पर-ईंट और पत्थर-पर-पत्थर रखना मात्र है, वास्तु-कला ने

ले लिया था, जिसे आप निर्माण का काव्य कह सकते है। पश्चिमी भारत मे कारला, भज तथा बेदसर के गुफा-मन्दिरों मे हम देखते हैं कि पत्थरों को तराशकर इन गुफाओ को बनाने वाले बौद्ध-भिक्षुओ ने शिल्प और चित्रकारी की मदद से किस प्रकार शान्ति का वातावरण, जैसा वे चाहते थे, वैसा ही सृजित किया।

चिड़ियों, जानवरों और देवताओ के जो सुन्दर चित्र हमारे किसान आज भी अपने मकानो की दीवारों और दरवाजों पर बनाते हैं, उनसे मालूम होता है कि अदृश्य शक्तियो पर विजय पाने के लिए जिस तालमय जादू-टोने का प्रश्रय हमारे आदिकालीन पूर्वज लेते थे, वह आज भी उसी रूप मे जीवित है। प्रमाण की कमी के कारण हम इन जन-चित्रो से अनुमान कर सकते है कि उस ज़माने के महलो और मन्दिरो की दीवारो पर किस प्रकार के चित्र चित्रित किये जाते थे। अजन्ता और बाग जैसे कुछ स्थान अवश्य है, जिन्हें देखकर मालूम हो जाता है कि हमारे पुराने कलाकारों मे से कई अग्रणी कलाकार थे। जीवन पर उनकी अद्भुत पकड थी और उसे चित्रों मे प्रदर्शित करने में वे अपना सानी न रखते थे। चट्टानो को काटकर निर्मित किये गए इन गुफा-मन्दिरों की दीवारें राजाओ, रानियो, नर्तकों, किसानो और साधु सन्तों के चित्रो से भरी है। उस ज़माने के

भरे-पूरे समाज का चित्रण इन भित्ति-चित्रों में इतनी खूबी के साथ किया गया है कि आज भी उस काल की मोहिनी और सौन्दर्य की अनुभूति हमें उल्लास से भर देती है।

विदेशी आक्रमणों और बाद के ध्वंसात्मक युद्धों ने बहुत-सी सुन्दर कला-कृतियों को नष्ट कर दिया। फिर भी बाद के युग के काफ़ी मन्दिर, नगर और मक़बरे बाक़ी हैं। ये इस बात का प्रमाण हैं कि जहाँ भी फ़सल अच्छी और सरकार सुयोग्य होती थी, भारतीय कल्पना नये-नये रूपों में प्रस्फुटित होती रही। दक्षिण के हिन्दू-मन्दिरों के गोपुरम, इलोरा के भित्ति चित्र, क़ुतुब-मीनार, अकबर का बनवाया

हुआ लाल पत्थर का नगर फतहपुर सीकरी, उस्ताद मंसूर और जहाँगीर के दरबार के अन्य कलाकारों के बनाये हुए मोहक चित्र, अहमदाबाद के सुन्दर महल, वैभव की प्रतिमूर्ति ताज-महल और लाल क़िले का गौरव देखकर अपने देश के प्राचीन कलाकारों की कुशलता पर हमें दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है।

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक हमारे पूर्वज सौन्दर्यशाली महल और मोहक उपवन बना रहे थे और अवकाश के समय उनके भित्ति-चित्रों या उल्लास-भरे दृश्यों के अलबम देखकर अपना मनोरंजन किया करते थे। यह
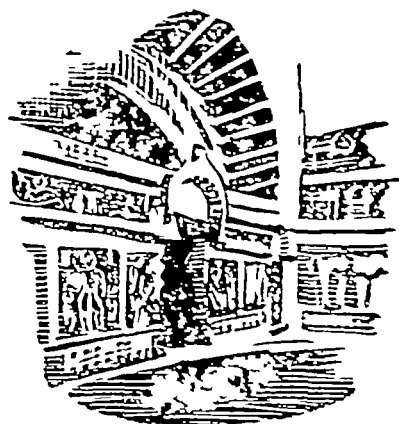
आश्चर्य की बात है कि हमारे देशवासी किस प्रकार विदेशी गुलामी के बावजूद इन सब तथा अन्य आश्चर्य-जनक चीजों की सृष्टि करते रहे।

आज दुनिया के अन्य लोगों के साथ ही-साथ हमारे सामने भी मशीन का खतरा खड़ा है। मशीन, जो आश्चर्य की सृष्टि करती है और इतनी चीजें आनन-फानन में तैयार कर देती है, हर जगह हाथ का स्थान ले रही है। यह लोगों से स्वान्त सुखाय अवकाश के समय अपने हाथों से
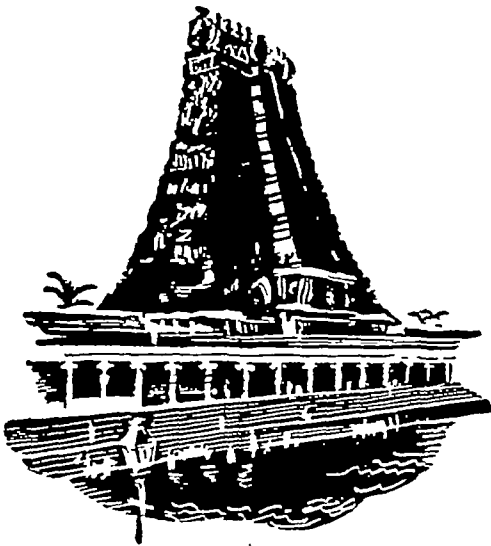
चीजें बनाने का मौका छीन लेती है। वास्तव मे, हम मशीन से लगभग सभी चीजें तैयार कर सकते हैं। इसके बावजूद हमे मनोरंजन के लिए बहुत कम समय मिलता है। मनुष्य की आत्म-प्रेरणा, जो उसे नई-नई चीजें निकालने और अपने विचारों व भावनाओं को मूर्त रूप देने को प्रोत्साहित करती है, आज दबने लगी है। यह भली भाँति ज्ञात है कि जब मानव की क्रियात्मक शक्ति और कलात्मक विकास रुद्ध हो जाता है तो वह ध्वस की ओर अग्रसर होता है और उन तमाम चीजों का नामोनिशान मिटा देने की धमकी देने लगता है जिनकी रचना दूसरों ने इतने प्रेम, परिश्रम और चाव से की थी।

एक दूसरी बात भी है जो हमे याद रखनी चाहिए। मशीन से बनी तस्वीरें और खिलौने ज्यादातर इतने खराब होते हैं कि कुछ कलाकार अपने तई अवकाश ग्रहण कर लेते हैं। वे केवल

अपनी ही खुशी के लिए चित्र बनाने लगते है या अपने कुछ इने-गिने मित्रों मात्र के लिए, जो उन्हें समझ सकते हैं। आम जनता से वे घृणा-सी करने लगते है। इसके विपरीत मिलों मे काम करने वाले मज़दूर और गरीब जनता, जिन्हे कला की बारीकियाँ सीखने का कभी अवसर या समय नहीं मिला, केवल फिल्म स्टारों और नेताओं के रगीन चित्र ही पसन्द करने लगते हैं। जीवन की यथार्थता से भागकर अन्तरात्मा के अँधेरे कोने मे शरण लेना उतना ही बुरा है जितना चीजो की उल्टी-सीधी फोटोग्राफी करना। यदि मनुष्य अपनी भावनाओं व मन सघर्ष को समझकर अपने दिलो-दिमाग से चित्रित करने की कोशिश न करे तो कला का अस्तित्व ही न रहेगा। दुनिया मे आज दु ख-दर्द की कमी नहीं है और जीवन के भले तत्त्वों को प्राप्त करना इतना सरल है। कला ही बता सकती है कि मनुष्य अपने मार्ग की कठिनाइयों पर किस प्रकार विजय प्राप्त करके भरे-पूरे जीवन की सृष्टि कर सकते हैं। इस प्रकार मकान बनाने वाले, चित्र खींचने वाले और शिल्पकार जीवन को सुखमय बनाने के सघर्ष और सच्चे अर्थ मे मानव बनने के प्रयत्न मे हमारी मदद कर सकते है।

आठवाँ अध्याय

शब्दों की दुनिया

[१]

अमरीका के कवि हेथोर्न ने एक बार कहा था—"हमारी बोली या भाषा पक्षियों की चीं-चीं और चहचहाट या अन्य जगली बोलियों से कुछ ही अच्छी है।"

मगर किसी को ठीक पता नहीं कि शब्द कैसे बोले जाने लगे। इस सम्बन्ध में तरह-तरह के अनुमान लगाए जाते हैं।

हेथोर्न के सिद्धान्त को 'भों-भों' का सिद्धान्त कहते हैं। कुत्ता भौंकता है। मालूम होता है कि वह भों-भों कर रहा है। अत इन्सान कुत्ते की बोली को 'भों-भों' कहने लगता है। मगर इस विचार मे कठिनाई यह है कि हिन्दुस्तानियों को तो मुरगा 'कुक्-डू कू' कहता मालूम होता है, मगर अंग्रेजों को 'काक-ए-डूडलडू' और इटली वालों को 'चिचरीं-चीं'।

दूसरा सिद्धान्त 'टन-टन' का है, जिसके अनुसार ईश्वर ने ही शब्दों के अर्थ और उनकी ध्वनि में साम्य स्थापित कर रखा है। किन्तु सब लोग तो मानते ही नहीं कि ईश्वर है भी या नहीं, इसलिए इस सिद्धान्त से भी कुछ काम नहीं बनता। ऊँह-ऊँह के सिद्धान्त के अनुसार भाषा का जन्म आश्चर्य, डर, आनन्द और दुख मे उत्पन्न विस्मयादिबोधक ध्वनियों से हुआ। यह सिद्धान्त आह-ओह के सिद्धान्त से बहुत मिलता-जुलता है, जिसके अनुसार शुरू-शुरू में काम करते और बोझ वगैरह उठाते समय मनुष्य के मुँह से निकलने वाली आवाजों से ही शब्द उत्पन्न हुए।

आह-ओह का सिद्धान्त झूम-शडाका के सिद्धान्त से बहुत

मिलता है। इसके अनुसार शुरू शुरू मे लोग शिकार आदि का स्वॉग करते समय जो जादू-मन्तर करते थे उसी से भाषा बनी। इसके अलावा और भी बहुत से अनुमान लगाये गए है, जैसे भाषा अपने-आप ही बन जाती है या यह झूठ बोलने के लिए निकाला गया एक तरीका है।

एक बात तय है। हज़ारों साल से कुत्ते भौंकते रहे हैं, बिल्लियाँ म्याऊँ-म्याऊँ करती रही है, गधे रेंकते रहे है और शेर दहाडते रहे हैं, मगर आदमी की बोली तथा भाषा जगह-जगह और समय-समय पर बदलती रही है। इसका कारण यह है कि भाषा वास्तव मे मनुष्य के काम को प्रकट करती है। जैसे-जैसे मनुष्य के काम-काज बदलते रहे, वैसे ही भाषा मे भी परिवर्तन होता रहा है। जब लोग एक ही स्थान पर रहते है तो परिवर्तन कम होता है और यदि वे इधर-उधर घूमते रहें तो नये शब्द और बोलने के नये तरीके निकलते रहते है। और हॉ, समय के साथ-साथ शब्दों के अर्थ मे अन्तर आता रहता है, जैसे हमारे पूर्वज सस्कृत बोलते थे, लेकिन हम समझ भी नहीं पाते और टूटी फूटी हिन्दुस्तानी मे बातचीत करते है।

अगर हम मान भी ले कि शुरू-शुरू की आवाजों से शब्द बन गए, तब भी हम यह नहीं कह सकते कि ठीक-ठीक शब्द कितने दिनों मे बन पाए और लिखी हुई भाषा का जन्म होने मे तो हज़ारों साल लग गए होंगे।

[२]

किसी भी भाषा के अस्तित्व का पहला प्रमाण मोहेनजोदडो और दजला फरात की घाटियों के बीच सुमेर मे मिला है। शायद ये दोनों सभ्यताएँ चार हज़ार वर्ष से पहले की और किसी प्रकार आपस मे सम्बन्धित थीं।

इसके बाद के प्रमाण बेबीलोन और सीरिया मे बोली जाने

वाली भाषा के हैं जो लगभग ईसा के तीन हज़ार वर्ष पहले तक की है। इसके बाद हमें मिस्र और चीन के अक्षर मिलते हैं जो ईसा से दो हज़ार वर्ष पहले के जान पड़ते हैं।

आरम्भ की इन भाषाओं के बाद की भाषाओं के ढेरों प्रमाण मिलते हैं, जिनसे मालूम हो जाता है कि किस प्रकार आदि भाषाओं से तरह-तरह की प्रादेशिक बोलियाँ निकलती गईं।

आइए, अब हम कुछ पुरानी लिपियों का निरीक्षण करें।

[३]

जब हम देखते हैं कि मनुष्य किस तरह अपनी तरह-तरह की आवाज़ों को अक्षर-बद्ध करने लगा, तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है।

प्रारम्भ में तो उसे जो-कुछ कहना होता था वह उसे चिह्नों द्वारा कहता था। इन चिह्नों को वह पत्थर, मिट्टी या पेड़ों पर खरोंच देता था। ये चिह्न शब्द तो नहीं थे, पर इनसे भाव स्पष्ट हो जाता था। उदाहरण के लिए जब आप किसी चौराहे पर तीर का निशान देखते हैं तो आप यह नहीं सोचते कि कोई शिकारी तीर-कमान लिये खड़ा है। आप केवल यह समझते हैं कि तीर उस ओर इशारा कर रहा है जिधर आपको जाना चाहिए। फिर जब आप सड़क पर हाथ का निशान देखते हैं तो आप समझ जाते हैं कि वहाँ आपको रुकना है, यह नहीं कि सिर्फ एक हाथ की तस्वीर बनी हुई है। ऐसा लगता है कि बहुत दिन हुए लोग अपनी बात इस तरह के निशानों और तस्वीरों के ज़रिए कहते थे।

प्राचीन काल मे मिस्र वाले इसी प्रकार की तस्वीरों से अपने भाव प्रकट करते थे। परन्तु अब कोई मिस्र वाला हमे यह बताने को नहीं है कि मिस्र की पुरानी भाषा बोलने मे कैसी लगती थी, हम केवल उसके अर्थ का ही अनुमान लगा सकते हैं।

चीन वालों के चित्रात्मक चिह्न ज़रा और आसानी से समझे

जा सकते हैं, यद्यपि आजकल की लिपि मे इन चित्रो का रूप लगभग पूर्णत परिवर्तित हो गया है।

पहले बच्चे का चित्र कुछ इस तरह का होता था।

और अब यह इस प्रकार का होता है'

पुराने जमाने मे पहाड ऐसे दिखाया जाता था।

अब यह इस प्रकार का होता है।

इस अगले चित्र मे यह दिखाया गया है कि पुराने जमाने मे चीनी भाषा मे 'घोडा' कैसे लिखा जाता था और अब कैसे लिखा जाता है।

इस प्रकार की लिपि को यूनानी भाषा में 'आइडियोग्राफ' या भाव-लिपि कहते हैं, क्योंकि इसमें चित्र से अर्थ का बोध होता है, न कि ध्वनि का।

अब हमारा लिखने का ढंग सर्वथा बदल गया है। हम या तो ध्वनि या बोले जाने वाले शब्द लिखते हैं। हम अक्षरों का प्रयोग करते हैं जिनकी ध्वनि निश्चित है, परन्तु जिनका अपना कोई अर्थ नहीं होता। इस लिपि को ध्वनि-लिपि कहते हैं।

इस प्रकार जितने भी अक्षरों का हम प्रयोग करते हैं, इनं एक

की अपनी लम्बी और मनोरजक कहानी है।

[४]

उन भाषाओं को छोडकर, जो मृत है या बोली नहीं जातीं, सबसे पुरानी भाषाएँ, जिनके सम्बन्ध मे हमे कोई निश्चित जानकारी नहीं है, भारतीय यूरोपीय परिवार की है। ऐसा मालूम पडता है कि कुछ कबीले मध्य-एशिया से चारो ओर निकल पडे। उन्हें आर्य कहते है। उनमे से कुछ यूरोप की ओर चले गए, कुछ ईरान और बाल्टिक सागर के तट से होते हुए भारत आये। भारतीय-यूरोपीय भाषाओ मे सस्कृत, ग्रीक, लैटिन तथा पहेलवी है। इन भाषाओं के बहुत से शब्द आपस मे मिलते-जुलते है। इनमे से कुछ शब्द बरफ, देवदार, चीड, घोडा, भालू, बाल, भेडिया, ताँबे और लोहे के लिए है। इससे लगता है कि ये लोग ताम्र-पाषाण युग मे ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व रहते थे।

शब्दों तथा मन्त्रों के बोले जाने और लिखे जाने के बीच जो समय लगा वह हमारे अपने इतिहास से स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि यह निश्चित है कि हमारे वेदो के श्लोको का पाठ बहुत पहले होने लगा था यद्यपि वे बहुत बाद मे लिखे गए। पिता अपने पुत्र को ये श्लोक कण्ठस्थ करा देता था और वह अपने वशजों को। इसी प्रकार ये पीढी-दर-पीढी चलते गए, फिर भी वैदिक मन्त्र ससार की सबसे पुरानी लिखी हुई चीजो मे से है।

[५]

पं० नेहरू ने कहा है, "यदि मुझसे पूछा जाय कि भारत के

पास सबसे बड़ा खजाना क्या है और उसका सुन्दरतम दायित्व क्या है तो मैं बिना किसी झिझक के उत्तर दूँगा कि यह संस्कृत वाङ्मय और उसमें उपलब्ध साहित्य है।"

यह वास्तव में सत्य भी है, क्योंकि यदि हम उन आश्चर्यजनक बातों के बारे मे सोचे जो हमारे पूर्वज प्रारम्भिक ग्रन्थों मे उस समय लिख गए थे जब यूरोप के लोग अभी इन बातों मे बच्चे थे, तो हमारा अपनी विरासत पर गर्व करना न्यायोचित ही होगा।

यह विरासत क्या है?

यह वेदों के सुन्दर, सगीतमय काव्य मे है। यह उपनिषदों के बुद्धिपूर्ण मन्त्रों मे है। रामायण और महाभारत जैसे विशाल महाकाव्यों मे यह है। यह कालिदास और हर्ष व शूद्रक के अमर नाटकों में भावना, अनुभूति और चरित्र के चित्रण में है। इन सभी ने हमारे पूर्वजों को शिक्षा दी थी कि जीना कैसे चाहिए।

ऋग्वेद के प्रारम्भिक श्लोक साधारणत सरल हैं। मालूम होता है कि इन गाने वाली जातियों को प्रकृति की भयावह शक्तियों, आँधी-तूफान, ऊँचे-ऊँचे पहाडों, आग और पेडों से भरे घने जगलों का सामना करना पडता था। वे समझते थे कि इनमें से हरेक चीज की अपनी-अपनी आत्मा होती है। अत उन्होंने तूफान लाने के लिए रुद्र, वर्षा देने के लिए इन्द्र, आग के लिए अग्नि और धूप के लिए सूर्य आदि कई देवताओं की कल्पना की। वे लोग अच्छी फ़सल देने के लिए इन सभी देवताओं से प्रार्थना करते थे, उनकी पूजा करते थे और बलि चढाते थे। बाद में ऋग्वेद मे और सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में उन्होंने अधिक गूढ प्रश्न पूछने शुरू किये। जीवन दुरूह होने लगा था और कई समस्याएँ उठने लगी थीं। अत उन्होंने तरह-तरह के अनुमान लगाकर इन समस्याओं और सृष्टि की पहेली को हल करने की

कोशिश की। शायद आपको याद होगा कि 'सृष्टिसूक्त' इस विश्व मे जीवन का रहस्य सुलझाने मे बडी सहायता करता है।

उपनिषदा मे हम देखते है कि कबीले गॉवो मे बस गए हैं और एक-दूसरे से उन्होंने अपने सम्बन्ध सुस्थिर कर लिये है। अत वे देवताओं से अपने सम्बन्ध की खोज करने की कोशिश करते है और बडे वादविवाद के बाद एक परम ब्रह्म परमेश्वर की भावना का उदय होता है। वह बाकी सभी देवताओ का परम देवता है। उपनिषदों मे सृष्टि की बात इसी तरह समझाई गई है। परम ब्रह्म परमेश्वर ने एक बार विभिन्न जीवों की सृष्टि करने की कामना की और सृष्टि एव मानव का जन्म हुआ। और जिस तरह परमात्मा के एक से अनेक होने की कामना से सृष्टि की विभिन्न चीजों का जन्म हुआ, उसी तरह प्रत्येक जीवात्मा उस सर्वशक्तिमान मे लीन होकर एकात्म लाभ करने का इच्छुक है।

सरल-से मालूम होने वाले इस गूढ विचार ने लगभग दो हजार वर्ष तक हिन्दुओं के मस्तिष्क पर सर्वोपरि प्रभाव डाला है। असल मे इस सिद्धान्त मे कई तरह के परिवर्तन हुए, लेकिन लगभग सभी सस्कृत ग्रन्थों मे यह है।

जिन दिनो वेदों और उपनिषदो जैसे महाग्रन्थ लिखे जा रहे थे और महाकाव्यों की रचना हो रही थी, आर्य जातियाँ नव-पाषाण-युग के आदिवासियों से युद्धरत थी। उन पर विजय पाने के बाद उन्होंने ग्राम्य-जीवन की सुव्यवस्था उस आधार पर की जिसे हम वर्ण-भेद कहते है। कबीलों के वृद्ध लोग, जो पुजारी पुरोहित का काम करते थे, ब्राह्मण कहलाए। उनसे युवा योद्धा क्षत्रिय कहलाए। व्यापारियों को वैश्य नाम दिया गया। निम्न कर्मचारी शूद्रो की श्रेणी मे रखे गए जो अधिकाशत विजित लोगो मे से सगठित किये थे। यह विभाजन पहले वर्ण रंग पर आधारित था, क्योंकि आर्य गौर वर्ण के थे और द्रविड काले रग के।

बाद में यह काम का विभाजन बन गया और इसने एक नये समाज का निर्माण करने मे सहायता दी। लेकिन दो सौ वर्ष के बाद इसके फलस्वरूप कई समस्याएँ उत्पन्न होनी शुरू हुई, क्योंकि पुजारीगण नीची जातियों को नीची नजर से देखते थे।

उसी समय दो महान् व्यक्तियों—गौतम और महावीर—का उदय हुआ। ऊँची जाति वाले नीची जाति वालों से जिस क्रूरता का व्यवहार करते थे, उन्हें वह पसन्द न था और उन दोनों ने ही कहा कि सभी इन्सान भाई-भाई हैं। इन दोनों महात्माओं के दिलों मे सभी जीवों के लिए अपार करुणा और दया थी—जानवरों और पेड़-पौधों के लिए भी। उन्होंने शिक्षा दी कि किसी को भी किसी दूसरे जीव को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए। पुजारी-पुरोहितों ने सस्कृत को दुरूह से दुरूहतर बना दिया था। अत. साधारण जनता प्राकृत भाषाओं में बातचीत करती थी। गौतम और महावीर ने अपनी शिक्षाएँ देने के लिए प्राकृत भाषाओं का उपयोग किया, जिसे साधारण जनता समझ सकती थी। इस तरह जनता की भाषाओं का विकास हुआ। हिन्दी, बगला, गुजराती, मराठी और जो अन्य भाषाएँ हम आजकल बोलते है और लिखते हैं, इसी प्रकार बनीं।

लेकिन सस्कृत ही वह भाषा थी जिसमें देवताओं और मनुष्यों के बारे में ग्रन्थ रचे गए। ये हमे आज भी उपलब्ध हैं। हम

देखते हैं कि मानव-जीवन का कोई भी अंग नहीं है जिसकी चर्चा हमारे देश के महान साहित्य मे न हुई हो। उनमे से कुछ ग्रन्थ तो विश्व मे सुन्दरतम है जो विश्व की बाकी भाषाओ मे सृजित किसी भी सुन्दर साहित्य के बराबर है।

[६]

चीन के साहित्यकारो और विचारकों का समृद्धिशाली इतिहास उतना ही पुराना है जितना हमारा। लेकिन हमे उनके प्राचीन ग्रन्थों के बारे मे अधिक नहीं मालूम। भित्ति-चित्रो की धुँधली

आकृतियो की ही भाँति ये महान् व्यक्ति इतिहास मे अवतरित होते मालूम होते है। चीन के अतीत की गौरव-गाथाओ और प्राचीन किंवदन्तियो से हमे कुछ प्राचीन महर्षियो का ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ, चीन मे याओ नामक एक दार्शनिक राजा हुआ था। उसके बाद

उसका उत्तराधिकारी शुन हुआ जो दयालु सम्राट् माना जाता है। फिर वहाँ यू महान् हुआ, जिसने बाढ़ों पर नियन्त्रण किया और एक राजवंश की नींव डाली। अन्य भी कई व्यक्ति वहाँ हुए जिनके विचार कविताओं तथा ज्ञान से भरे उपदेशों के रूप में आज भी मिलते हैं।

चीन के इस लम्बे अतीत का ज्ञान हमें अधिकांशतः कन्फ्यूशस नामक महात्मा से होता है जो ईसा पूर्व ५५१ से ४७९ ई० पूर्व तक जीवित थे। उनका असली नाम कुंग फू-त्जू था। साधारणतः उन्हें 'गुरुदेव' कहा जाता है, क्योंकि जो बुद्धिपूर्ण उपदेश और ज्ञान की बातें उन्होंने अपने ग्रन्थों में लिखीं, वे अब तक चीन के धर्म-शास्त्र गिने जाते थे।

मानव के बारे में कन्फ्यूशस के विचार अत्युच्च थे। उन्होंने यह लिखने की कोशिश की कि लोगों को एक-दूसरे से कैसा व्यवहार करना चाहिए। राजकुमारों और जनसाधारण दोनों से ही उनका समान मित्र-भाव था। 'सभी से वे छोटी-से-छोटी और

बडी-से-बडी चीजों के बारे मे बात करते थे। वे महसूस करते थे कि इन्सान को प्रकृति की भाँति सीधा, सच्चा और स्वच्छ हृदय होना चाहिए। वे चीनी जनता को सम्राट् के बच्चों की तरह समझते थे। स्वय सम्राट् को ईश्वर का पुत्र समझा जाता था। यही कारण है कि चीनी सम्राट् हजारो वर्ष तक शासन करते रहे।

चीन के दूसरे महर्षि, जो कन्फ्यूशस के बाद हुए, मेन्शियस थे।

लेकिन कन्फ्यूशस से भी पहले लाओ त्जू हुए थे। उन्होंने भी शिक्षा दी थी कि मानव को प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। लेकिन उन्होंने अपनी शिक्षा रूपकों मे दी, जिससे मालूम होता है कि वे कुछ गूढ विचार सामने रखना चाहते थे। उदाहरणार्थ जब वे जगली जानवरो, गेंडे, जगली भैंसे या शेर की चर्चा करते हैं तो वे उन्हे उन खतरो का प्रतीक मानते है जिनसे मनुष्य को 'ताओ' बचा सकती है, जिसे आप रहस्यमय शक्ति कह सकते है। लाओ त्जू और उनके मतावलम्बियो ने चीनी जनता के विचारो और साहित्य पर उतना ही प्रभाव डाला जितना कन्फ्यूशस ने।

लेकिन बहुत सा सुन्दर काव्य बाद मे उन महात्माओं ने लिखा जो जीवन से जीवन के लिए प्रेम करते थे। इस तरह सैकडों कवि हुए हैं। इनमे सर्वाधिक प्रसिद्ध ली पो और पो चु थे। उन्होंने प्रकृति के विविध सुन्दर रूपो की अनुभूति के साथ ही अपने कल्पना चित्रों को कविता का रूप दिया।

चीनियों ने भी बहुत पहले ही वीरो की गाथाएँ लिखनी शुरू कीं। इनमे लम्बे उपन्यासों मे से एक 'सभी इन्सान भाई है' विश्व के इने-गिने प्रारम्भिक उपन्यासो मे से है।

बहुत दिन तक चीन की लिखने और बोलने की भाषाएँ अलग-अलग थीं। लेकिन पिछले पचास वर्ष मे बोलने की भाषा ही लिखी जाने लगी है। इस नई जबान मे कई महत्त्वपूर्ण पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है।

तीसरी महान् साहित्य-गंगा यूनान में प्रवाहित हुई। यूनानी साहित्य संस्कृत और चीनी साहित्य की ही भाँति महान् यूनानी सभ्यता के निर्माण में लगे यूनानियों के जीवन, कार्यों और अनुभूतियों का दर्पण है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, यूनानियों ने अपने बडे-बड़े नगरों का निर्माण मेहनती गुलामों की ही मदद से किया था। अत उन लोगों के विचार उस अवकाश के काल में प्रस्फुटित हुए जो साधारणत महात्माओं को बैठकर चिन्तन-कार्य के लिए मिलता था।

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि चूँकि यूनानी सभ्यता का निर्माण गुलामो द्वारा हुआ था इसलिए उनके मनीषियों के बुद्धि-पूर्ण कथन असत्य हैं। असल मे उस समय उच्च पदस्थ लोग, जो यूनान पर शासन करते थे और जिन्होंने नगर-राज्यों का निर्माण किया, उतने ही प्रगतिशील थे जितने आर्य, जिन्होंने जाति-व्यवस्था को जन्म दिया।

यूनान के कई विचारक—सुकरात, प्लेटो और अरस्तू-विश्व-

भर मे किंवदन्तियों की तरह प्रसिद्ध हो गए है। सुकरात लोगों से जीवन और जीवन की समस्याओं पर बातचीत करते हुए घूमते-फिरते थे। वे इतनी सचाई से बोलते थे कि कुछ लोग उनसे चिढने लगे। उनके शत्रुओं ने कहा कि वह कच्ची उम्र के लोगों को गुमराह करते हैं, अत उन्होंने एक अदालत मे सुकरात पर मुकद्दमा चलाया और उन्हें जहर पीने को बाध्य किया। लेकिन उन्होंने जो उपदेश दिये थे वे सब उनके शिष्य प्लेटो ने सवाद और बातचीत के रूप मे लिख लिए। सुकरात के विचार लेखनी-बद्ध करते हुए प्लेटो ने उसमे अपने भी कई विचार जोड दिए। सृष्टि कैसे शुरू हुई, कैसे इसका विकास हुआ और इन्सान को कैसे रहना चाहिए आदि प्रश्नों पर और विभिन्न यूनानी महात्माओं के विचारों मे जो मतान्तर था, उनके ग्रन्थो से हमे स्पष्ट हो जाता है।

यूनानी महात्माओ की महत्ता इसी बात मे थी कि वे सदा नई नई बातो की जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करते थे। सदा ही वे प्रश्न और शकाएँ करते और नये सत्यो का पता लगाते रहते थे। अन्वेषण की यह प्रवृत्ति हिपोक्रेटिज नामक महात्मा के ग्रन्थ मे स्पष्ट है—"हमारे जीवन-यापन का वर्तमान ढग मेरे विचार से अन्वेषण और विकास के लम्बे युग का फल है "

हेराक्लाइटस से लेकर—जिसका विश्वास था कि सृष्टि का तत्त्व अग्नि ही है—अरस्तू तक—जिसने प्रत्येक चीज़ का पता लगाने के लिए वैज्ञानिक तरीके अपनाए—यूनानियों के विचार यूरोप के जीवन और विचार का अग बन गए है। आज यूनानी दार्शनिकों और लेखकों ने जिन विचारों का प्रतिपादन किया था इनकी प्रतिष्ठा विश्व के सभी भागों के लोग करते है।

साहित्य की एक और धारा लैटिन का विकास रोमन साम्राज्य के साथ-साथ हुआ। आज यह पाश्चात्य परम्परा का अग है। विश्व के कुछ महत्तम कवियों और विचारकों ने इसी भाषा मे रचना की।

माध्यमिक काल, यानी लगभग ६०० वर्ष पूर्व तक, लैटिन ही यूरोप के सभी देशों की भाषा थी। ईसाइयों के गिरजाघर, जहाँ इसी भाषा का प्रयोग होता था, सभी जगह मान्य थे।

लेकिन शीघ्र ही ईसाइयों मे झगड़े शुरू हो गए। कई व्यक्ति उन आज्ञाओं का भी विरोध करने लगे जो ईसाइयों के गिरजा-घरों के प्रधान पोप निकालते थे। इस प्रकार ज्ञान और प्रकाश का नया युग शुरू हुआ, जिसे पुनरुत्थान-काल कहते है। पुनरुत्थान मे योग देने वाले कवियों मे डैण्टे और पेट्रार्क प्रमुखतम थे। जब नरक के भय से, जहाँ पोप के कथनानुसार उन्हे पापों के लिए जाना अनिवार्य था, पादरीगण मुँह लटकाए घूमते थे, इन नये कवियों ने प्रेम और जन-साधारण तथा सुन्दर-सुन्दर चीजों के बारे मे काव्य-रचना की। इसी काल में कथाकार बोकेशियो ने आदमियों के भले और बुरे कर्मों के बारे में अपने आरम्भिक उपन्यास
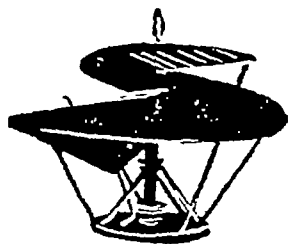
लिखे। और जब बड़े-बूढ़े बिना किसी भी प्रकार की शका किये अपने पुराने अन्धविश्वासों को दिल से लगाए थे, युवकों की पीढ़ी ने गिरजाघर और भाषण-गृह छोड़कर सत्य पर आधारित चीजों का पता लगाना और कहना शुरू किया। वैज्ञानिक प्रवृत्ति बढ़ रही थी और मनुष्य विश्व का स्वामी बनने लगा था।

इस नई आग के साथ लोगों ने पुस्तक लिखने, चित्र बनाने, अन्वेषणशालाओं मे प्रयोग करने और इस बात का पता लगाने के लिए कि पृथ्वी कैसी है, अथाह समुद्रों मे जाना शुरू किया। लियोनार्डो दा विंसी इसी किस्म का व्यक्ति था जिसे हम इस नये युग का प्रतीक कह सकते है। उसने अपने विचार पुस्तकों मे प्रकट किये, पत्थरों मे शिल्पकारी का, चित्र बनाये और वायु-

यान बनाने और वह प्रत्येक काम करने की कोशिश की जो मनुष्य को प्रगति के मार्ग पर ले जाय। कोलम्बस पुनरुत्थान-काल का दूसरा व्यक्ति था। वह भारत के मार्ग का पता लगाना चाहता था, लेकिन उसने अमरीका को खोज निकाला।

इसी समय यूरोप के विभिन्न देशों के महान् साहित्य की रचना लैटिन के बदले स्थानीय भाषाओं मे होने लगी। अंग्रेज़ कवि शेक्सपियर ने इस नये जीवन की अनुभूति प्रकट करने मे सर्वाधिक श्रेष्ठता प्राप्त की।

पुनरुत्थान के साथ ही एक नया आन्दोलन चल रहा था जिसे धर्म-सुधार कहते है। ईसाई गिरजाघर अत्यन्त शक्तिशाली हो गए थे और लोगों को नये विचार अपनाने की स्वतन्त्रता न देते थे। अत कई साहसी व्यक्तियों ने तय किया कि ईसाई मतावलम्बी होते हुए भी उन सभी चमत्कारों मे विश्वास नहीं कर सकते जिनमें आस्था रखने को पोप कहते थे। अत उन्होंने धर्म को प्रत्येक व्यक्ति का निजी मामला बनाना चाहा। इरास्मस नामक एक डच ने कैथॉलिक गिरजे के मूर्ख और घमण्डी पादरियों पर, जो जनता द्वारा गिरजाघरों को दान में दी गई उपजाऊ भूमि पर मजे मे रहते थे, लेकिन वास्तव मे भले आदमी न थे, दोपारोपण शुरू किया। इरास्मस चाहता था कि ईसाई अधिक सच्चे और ईमानदार बनें।

उसके बाद मार्टिन ल्यूथर हुआ। ल्यूथर एक जर्मन किसान था। उसने बाइबल का अध्ययन किया और देखा कि ईसा के शब्दों और पोप व उनके धर्म-गुरुओ द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले शब्दों मे कितना अन्तर है। उसने खुले-आम पोप का विरोध किया। पादरीगण उससे घृणा करने लगे। उसके बाद जो झगडे शुरू हुए, उनमे ल्यूथर की भाँति विरोध ('प्रोटेस्ट') करने वाले 'प्रोटेस्टण्ट' ईसाई बन गए और कैथॉलिक गिरजे से अलग हो गए। पोप का साम्राज्य समाप्त हो गया और ईश्वर के प्रति नये तथा अधिक तर्कसगत रुखो की चर्चा होने लगी। अक्सर ये सब आपसी झगडे हिसा और युद्ध के कारण बने।

लेकिन मानव का यशोगान करने वाली विज्ञान और दर्शन, कविता व नाटक की पुस्तकों और चित्रो की सख्या दिनों-दिन बढने लगी और इस साहित्य व कला ने हो हमारे दिलो-दिमाग पर छाकर हमे वह बना दिया जो हम आज है।
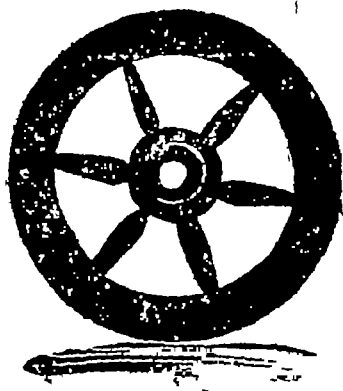
नवाँ अध्याय

यन्त्र-युगीन सभ्यता का जन्म

[१]

क्या आपको मालूम था कि जिस मनुष्य ने सबसे पहले पहिये की कल्पना की वह शायद संसार का सबसे बड़ा आविष्कारक था ?

आप पूछ सकते हैं कि मैं ऐसा क्यों कह रहा हूँ। मनुष्य ने जैसे-जैसे अद्भुत और विलक्षण कार्य किये हैं उनसे आपको परिचित कराने के बाद मेरा यह कहना कि पहिया या चक्र अन्य सभी सुन्दर तथा विलक्षण चीजों से अधिक महत्त्वपूर्ण है, निस्सन्देह एक प्रश्नवाचक विषय बन जाता है। ऐसी हालत में आपका यह प्रश्न स्वाभाविक ही होगा कि ऐसा कैसे हो सकता है।

बात यह है कि एक बार अन्न संग्रह करने की आदत पड़ जाने पर मनुष्य जब तक पहिये का आविष्कार न कर लेता, तब

तक वह कोई तरक्की नहीं कर सकता था। पहिये की ही मदद से मनुष्य ने प्याला बनाया जिससे वह पीने का काम लेता है। खेतों मे सिंचाई के लिए कुओं से पानी निकालने मे पहिये की मदद ली गई है। बैलगाडी, रेलगाडी और हवाई जहाज़ भी इसी पहिये की मदद से चलते हैं। इतना ही नहीं, कारखानों मे हज़ारों मशीनें इसी पहिये की मदद से चलती हैं। इन्हीं से हमे कपडा और प्लास्टिक की चीज़ें मिलती है। इन्हीं मशीनों से औज़ार तैयार होते हैं जिनकी सहायता से दूसरे आवश्यक औजार बनाये जाते हैं और इन सभी वस्तुओं से मिलकर हमारी सभ्यता बनती है।

आइए, अब हम यह जानने की कोशिश करे कि यह जीवन-चक्र, जिसकी मदद से हमे सारी चीज़े उपलब्ध होती हैं और जिसकी वजह से आज के युग मे हमारे विचार और व्यवहार एक प्रकार के ही ढाँचे मे ढलकर बनते और बिगडते हैं, चलता कैसे था।

साधारणत हमे ठीक-ठीक नहीं मालूम कि मनुष्य ने इस पहिये की कब और कैसे खोज की। लेकिन हम इसके बारे मे एक कहानी की कल्पना या रचना अवश्य कर सकते हैं। सम्भव है, एक दिन ऐसा हुआ कि मनुष्य आग जलाने के लिए लकडी के लिए पेड का तना काटकर अपनी पीठ पर लादे ले जाने से तग आ गया और वह उसे घसीटने लगा, अथवा पहाडी से नीचे लुढकाने लगा और लकडी के इस लुढकते हुए कुन्दे को देखकर उसे पहले-पहल घूमते हुए पहिए का ख्याल आया।

असल मे, ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे पहला पहिया कुम्हार का चाक रहा होगा। आज से पाँच हजार साल पहले, मोहेनजोदडो के लोग निश्चय ही जानते थे कि इस तरह का चाक कैसे घुमाया जाता है। इसके प्रमाण मे सभी किस्म के और

सभी शक्लों के मिट्टी के बरतन हमें मिलते हैं। ये बरतन निश्चय ही कुम्हार के चाक पर बनाये गए थे। मिस्र में कुम्हार के पहिये या चाक के बारे में लोगों की जानकारी इससे भी बहुत पहले की थी और चीन में भी अत्यन्त प्राचीन काल से लोगों को इसका पता था। लेकिन सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि यद्यपि इस पहिये को देखकर और कई तरह के पहिये बाद में बनाये गए, तिस पर भी हजारों साल गुजर जाने के बाद आज तक कुम्हार के उस आदिकालीन चाक में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इस-लिए आज भी जब आप गाँव में किसी कुम्हार को अपना चाक घुमाते और अपने हाथ से उस पर मिट्टी की विभिन्न चीजें

बनाते देखते है तो आप कल्पना कर सकते है कि मोहेनजोदडो के युग का कुम्हार भी उसी तरह बैठा अपने बरतन और दूसरी चीजें बनाता रहा होगा। बहुत सम्भव है कि प्रारम्भ मे कुम्हार एक हाथ से पहिया घुमाता और दूसरे हाथ से मिट्टी को नये-नये रूप देता रहा हो। बाद मे उसने पॉवो से यह पहिया घुमाना सीख लिया और दोनों हाथो से मिट्टी ढालने का काम लेने लगा। उसके बाद वह इस पहिये को रस्सी से घुमाना सीख गया जो कि चाक के गिर्द लिपटी रहती थी। यह चाक एक और पहिये से बॅधा रहता था जिसे कोई दूसरा आदमी घुमाता था, लेकिन उस शुरू के जमाने के कुम्हारों की निपुणता भी उतनी ही विलक्षण होती थी जितनी कि आजकल के कुम्हारो की। जिस समय मनुष्य ने कुम्हार का चाक घुमाना सीखा, लगभग उसी समय उसने लकडी के बडे-बडे कुन्दो के किनारो को काटकर लकडी के गोलाकार चक्र बनाने सीख लिए। लकडी के ये गोलाकार चक्र पहिये के भीतर धुरे से जुडे रहते थे। इस तरह पहले-पहल बैलगाडियो के लिए पहिये बनाये गए। इन बैलगाडियो का मोहेनजोदडो, चीन और रोम मे भी काफी प्रचार था।

[२]

हजारों वर्ष पूर्व ही इन्सान ने घोडा-गाडियॉ या रथ भी बनाये, जिन्हें एक, दो, तीन और कभी-कभी चार घोडे खींचते थे। रथ बडी तेज रफ्तार से चल सकते थे और शिकार मे उनका बडा महत्त्वपूर्ण भाग रहता था। अपनी आजीविका के लिए हमारे पूर्वज उन्हीं पर निर्भर करते थे और युद्धो मे इन्हीं रथों पर चढकर वे अपने शत्रुओं से लडते थे।

महाभारत मे रथो का उल्लेख हुआ है और मिस्र, यूनान, रोम, असीरिया आदि देशो के रथो के प्राचीनकालीन चित्र भी पाए जाते है। यह भारतीय वाहन, जिसे रथ कहते है,
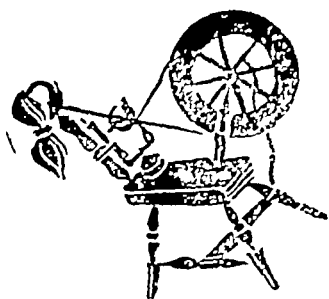
दूर-दूर और चमड़े की पट्टियों से धुरे में कसे होते थे। युद्ध में काम आने वाले रथों में छः और साधारण रथों में चार आरे होते थे।
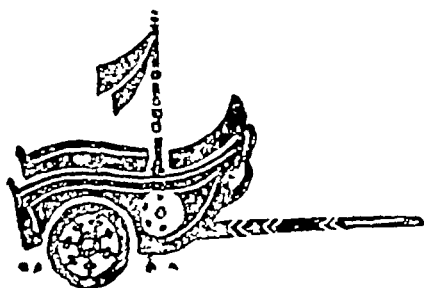
असीरिया का रथ भारतीय रथ की ही भाँति भारी और विशालकाय था। किसी-किसी रथ के पहियों की हाल धातु की होती थी।
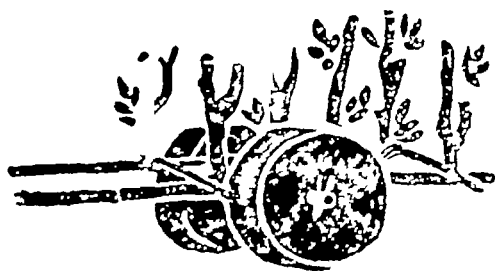
यूनान देश का रथ सोने और चाँदी से मढ़ा तथा अमूल्य कारीगरी-युक्त और सुडौल होता था। इसके पहिये पीतल के और धुरा फौलाद का होता था। प्रत्येक पहिये में आठ

हर भाग में ऐसे कुएँ देखे जा सकते है। कुएँ से पानी खींचने का दूसरा तरीका फारस क रहट के ढग का था। इसमे पहिये की गोलाई के साथ-साथ बँधे हुए छोटे-छोटे वडे भी चक्कर काटते है। यह पहिया एक दूसरे पहिये की सहायता से चलता है जिसे दो वैल खींचकर गोलाकार घुमाते रहते है। जैसे ही छोटे-छोटे वडे पहिये के साथ क्रमश नीचे की ओर घूमते जाते है उनका पानी नीचे नाली मे गिरता जाता है। इस तरह पानी खेतों मे ले जाया जाता है।
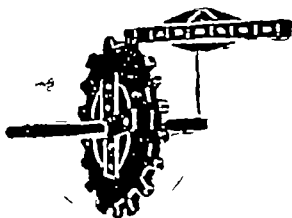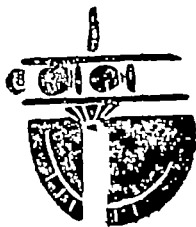
पहिये का व्यवहार सूत कातने के काम मे भी आता था, जैसे तकली मे, जिसका प्रचार महात्मा गाधी ने अपने देश मे पुन चालू किया। एक और तरह का उपयोग दो पाटो मे एक पहिये का होता था जिसे चक्की के पाट कहते है। सारी दुनिया मे औरते अकेले या किसी और को साथ लेकर खूँटी से ऊपर वाले पाट को चलाकर दो पाटों की चक्की मे अनाज या गेहूँ पीसती है।

ईसा से कुछ पूर्व मनुष्य ने पानी की चक्की का आविष्कार किया। इसमे बहते हुए पानी के दबाव से पहिया चलाया जाता था और इस तरह शक्ति उत्पन्न करके चक्की के पाटो मे अनाज पीसा जाता था। प्रथम शताब्दी मे इसी सम्बन्ध मे यूनान के एक कवि ने लिखा था

"पिसनहारी बालाओ, अब पीसने के कठिन कार्य मे हाथ न लगाओ, क्योंकि डेमेटर ने तुम्हें इस कार्य से मुक्त कर दिया है,
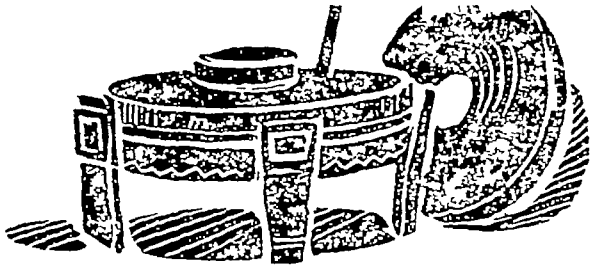
अब परियाँ तुम्हारा काम करेंगी। वे पहिये के सिर को ढकेलेंगी और उसका धुरा घूमने लगेगा।"

फिर भी धनिकों ने आज तक बराबर पवन-चक्की या जल-चक्की की अपेक्षा दो पाटों की चक्कियों मे पिसनहारियों द्वारा हाथ से अनाज पिसवाना ही पसन्द किया। उन्होंने दूसरे आविष्कारों की उपेक्षा की।

और जब इन आविष्कारों का यथेष्ट उपयोग नहीं किया गया तो आविष्कारकों और वैज्ञानिकों ने नये यन्त्रों के अनुसन्धान मे कम ध्यान दिया। मिस्र-वासियों और यूनानियों ने यन्त्रों तथा अपने अन्य प्रयोगों की सहायता से धन की अपार राशि एकत्रित की, जैसे खेतों के सींचने और खानों के खोदने के लिए।
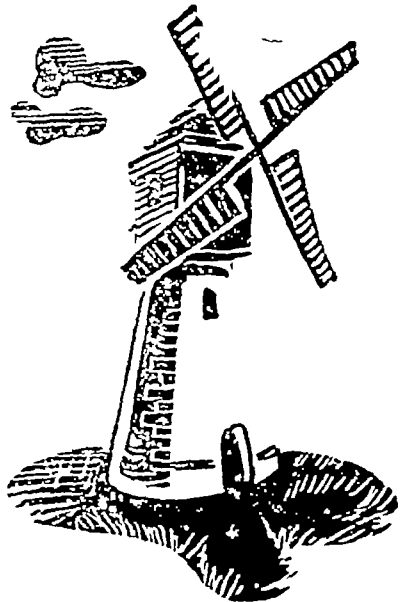
और इन दोनों देशों की सभ्यता का ह्रास मशीनों के प्रयोगों की अवहेलना से ही हुआ।

[३]

यह महत्त्व की बात है—जब अमीर लोग कुछ मशीनों का इस्तेमाल करके धन कमाते हैं और नये आविष्कारों का प्रयोग करने से इसलिए इन्कार कर देते हैं क्योंकि वे झंझट मे नहीं पडना चाहते, तो परिणाम यह होता है कि मजदूरों को वही कठिन परिश्रम करते रहना पडता है जो नई मशीनों ने उनके लिए सुलभ करा दिया है। क्योंकि इन्सान हजारों वर्ष से नये-नये औजारों का जीवन को सुखप्रद बनाने के लिए आविष्कार करता आया है, और क्योंकि इन औजारों की बदौलत ही उसने उन्नति की है, इसलिए औजार या मशीन की समस्या का सामना करना जरूरी है।

भूतकाल मे धनिकों ने अक्सर प्रगति का मार्ग अवरुद्ध किया। वे देखते थे कि गुलाम और गरीब व्यक्ति सस्ते मे मशीनों का काम करने के लिए खरीदे जा सकते हैं। धर्म-गुरु भी, और यह ठीक ही था, डरते थे कि इन्सान कहीं ईश्वर के काम की नकल करना शुरू न कर दे, अत उन्होंने भी आविष्कारों को प्रोत्साहन नहीं दिया। गिरजाघरों के धर्माधिकारियों ने तो वैज्ञानिक प्रयोगो पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया था।

किन्तु मनुष्य मूलत आविष्कारक प्राणी है। उसने अधिकाधिक प्रयोग करने प्रारम्भ किये, विशेषत ज्ञान और प्रकाश के उस युग मे जिसे पुनरुत्थान-काल कहते है।

[४]

एक मुख्य प्रयोग, जिसमे लोगो ने अपना हाथ डाला, वह भाप की सहायता से युद्ध-वाहनों का चलाना था। सिकन्दरिया के सन्त हीरो से लेकर, जो ई० पू० प्रथम शताब्दी मे हुआ, अठारहवीं शताब्दी मे हुए स्कॉटलैण्ड-निवासी जेम्स वाट तक कई लोगों ने

भाप का इंजिन बनाने के लिए सतत प्रयत्न किया। वाट ने १७७७ ई० मे इस तरह का पहला इंजिन बनाया। तत्क्षण ही यह आविष्कार अन्य वस्तुओं के निर्माण मे अत्यन्त व्यावहारिक सिद्ध हुआ, क्योंकि जिन सदियों में इस भाप के इंजिन का विकास हो रहा था, लोगों की आवश्यकताएँ और उसके साथ-ही-साथ उनकी रुचियाँ भी परिवर्तित हो गई थीं। उदाहरण के लिए, अंग्रेज सामन्तों और जागीरदारों ने भूमि घेरकर अपने कब्जे मे कर ली और बहुत से खेतों पर काम करने वाले मजदूर बेकार हो गए। इन लोगों को मैन्चेस्टर और ब्रेडफोर्ड के कारखाने मे काम पर लगाया गया। यहाँ अमेरिका, भारत और अफ्रीका के उन उपनिवेशों से, जिन पर साहसी अंग्रेज नाविकों और व्यवसायियों ने प्रभुता स्थापित कर ली थी, रुई लाई जाती थी। लकाशायर के कारखानों की आवश्यकता पूरी करने के लिए जॉन के ने उडन-ढरकी (फ्लाई शटल) और जेम्स हार ग्रेव ने अपने 'स्पिनिंग जेनी' नामक चरखे का आविष्कार किया। कुछ समय बाद अमेरिका के ह्निटने ने रुई मे से बिनौले अलग करने के लिए एक अन्य यन्त्र 'कॉटन-जिन' का आविष्कार किया। उसके बाद रिचर्ड आर्कराइट और एडमण्ड कार्टराइट ने पानी की शक्ति से चलने वाली वस्त्र बुनने की मशीनों का आविष्कार किया। वाट के इंजिन और आर्कराइट की बुनने की मशीनें, दोनों को मिलाकर साथ-साथ उपयोग में लाया जाने लगा। इस सम्मिलन ने मनुष्य के इतिहास को ही सर्वथा बदल डाला।

भाप का इंजिन बन जाने के बाद, वाट ने भाप से चलने वाला रेल का इंजिन बनाने का प्रयत्न किया। लेकिन वाट से पहले ही रिचर्ड आयर विचटिक ने एक रेल का इंजिन बना डाला जो बीस टन बोझ खींच सकता था।

भाप से चलने वाले समुद्री जहाजों की कहानी इससे भी
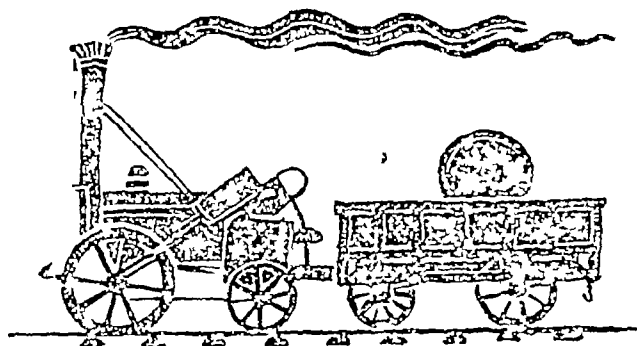
अधिक मनोरंजक है। कनेक्टिकट के जॉन फिच नामक व्यक्ति ने एक नाव बनाई जो १७८७ ई० में डेलावेयर नामक नदी में चलाई गई। एक दूसरे अमरीकी फुल्टन नामक व्यक्ति ने फिच की नकल करके पनडुब्बी बनाने की कोशिश की। उसने पेरिस जाकर नेपोलियन को यह समझाने की कोशिश की कि पनडुब्बी की सहायता से अंग्रेजी बेडे को किस तरह हराया जा सकता है। लेकिन नेपोलियन ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। अत फुल्टन ने वापस लौटकर एक जहाजी कम्पनी की स्थापना की और न्यूयार्क राज्य के आसपास भाप से चलने वाले स्टीमर चलने लगे। फुल्टन दिन-प्रतिदिन अमीर होता गया और जॉन फिच, जिसने यन्त्र-चालित परों (स्क्रू प्रापेलर) से चलने वाला पाँचवाँ जहाज बनाने पर अपना सारा धन खर्च कर डाला था, असफल हुआ। लोगों ने उसका मजाक उडाना शुरू किया और फिच ने आत्म-हत्या कर ली। लेकिन उसकी मृत्यु के बीस वर्ष बाद सवाना नामक जहाज ने २५ दिन में अमेरिका से लिवरपूल तक की यात्रा की। अब लोगों ने मजाक उडाना बन्द कर दिया। परन्तु वे फिच को भूल चुके थे और उन्होंने समझा कि भाप से चलने वाले जहाज का आविष्कार किसी और ने किया।

लगभग ६० वर्ष के बाद स्कॉटलैण्ड-निवासी स्टीफेन्सन ने यात्रा करने वाले जहाज का निर्माण किया। यही आधुनिक रेलों का जन्मदाता था।

पिछले एक अध्याय मे हमने गुफा-वासी के अग्नि-प्रज्वलन से लेकर बिजली के आविष्कार तक की कहानी बताई थी। इस आविष्कार के फलस्वरूप तार, टेलीफोन और उसके बाद बिजली के इन्जिन का निर्माण हुआ।

[५]

मशीनों का प्रादुर्भाव जहाँ एक ओर मानवता के लिए कल्याणप्रद था, वहाँ दूसरी ओर अभिशाप लिये हुए भी था। छोटे-छोटे लोग, जो अपने औजारों से जूते, लकडी के सन्दूक और बरतन वगैरह बनाते थे, अब क्षण-मात्र मे हजारों की सख्या मे चीजें उत्पन्न करने वाली मशीनों की तुलना मे नहीं टिक सके। मशीनें मँहगी थीं और ये कारीगर धनी नहीं थे। अत उनके लिए बडी-बड़ी मशीनें खरीदना सम्भव न था। इस कारण उन्होंने उसी तरह धनिको द्वारा सचालित बडे-बडे कारखानों मे मजदूरी करना प्रारम्भ किया जिस तरह बेकार भूमिहीन कृषक मजदूरों ने। कुछ बेकार कारीगरों ने सोचा कि मशीनें उनकी दुश्मन हैं और मशीनें तोडने लगे। इगलैंड मे इन विद्रोहियों को, जिन्हें 'ल्यू डाइट्स' कहते हैं, कुचल दिया गया और लोग अपनी किस्मत से समझौता करके बडे-बडे कारखानेदारों की नौकरी करने लगे। इससे उन्हें पहले से अधिक पैसे मिल जाते थे। वे गन्दगी और धुएँ से भरे बड़े नगरों मे रहने लगे और अपना वह हस्तकौशल भूल गए जिसकी बदौलत इन्सान हमेशा से सर्वोत्तम वस्तुओं का निर्माण करता आया है।

कारखानों के क्षेत्रों मे लोगों की स्थिति बहुत बुरी थी। अत मजदूर-वर्ग मजदूर-यूनियनों मे सगठित होने लगा, लेकिन

मालिकों को ये मजदूर-यूनियने सह्न न हुइ और उन्होंने अपने मित्र पार्लामेण्ट के सदस्यों से इन सगठनो के विरुद्ध कानून पास करवाए।

लेकिन शीघ्र ही लोगों ने अपने अधिकारो पर जोर देना और स्वतन्त्र होने के अधिकार की माँग करना प्रारम्भ किया। लुई सोलहवें के काल मे हुए टरगॉट नामक एक फ्रासीसी ने 'आर्थिक स्वतन्त्रता' की चर्चा छेडी और लिखा, "लोगों को वे जो चाहें करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए।" इगलैण्ड मे एडम स्मिथ ने स्वतन्त्रता और व्यापार के सहज अधिकारों की बातें कीं। कई लोगों ने 'जनता के घोषणा-पत्र' लिखकर अपने देश की सरकार मे अपने प्रतिनिधित्व और आवाज की माँग की। स्वभावत मिल-मालिक, जिनका सरकार मे जोर था, मजदूरो को शक्तिशाली नहीं बनने देना चाहते थे और यह आन्दोलन, जिसे 'चार्टिस्ट' आन्दोलन कहते है, बुरी तरह दबा दिया गया। धनी मिल-मालिकों की जीत हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि और अधिक वस्तुओं का उत्पादन हुआ। लेकिन इन वस्तुओं का उत्पादन करने वाले करोडों व्यक्ति गन्दी मजदूर बस्तियों मे अत्यन्त भयावह स्थिति मे जीवन के दिन काटते थे।

भारत को जीतने के बाद अग्रेजो ने हमारे देश मे भी मशीनों का प्रचलन शुरू किया। किन्तु अँग्रेज भारतीय मिलों मे उत्पादित वस्तुओं से प्रतियोगिता नहीं चाहते थे, अत भारतीय उद्योग विकसित न हो सके और हमारा देश पिछडा रहा। इगलैण्ड मे तो मजदूरों की हालत मे बडा सुधार हुआ, लेकिन हमारे मजदूर आज भी उसी तरह छोटी-छोटी गन्दी बस्तियो मे, जो इन्सान के रहने लायक भी नहीं है, जीवन-यापन कर रहे हैं, जिस तरह सौ वर्ष पूर्व इगलैण्ड के मजदूर करते थे।

आज यह स्पष्ट है कि मशीनी सभ्यता ने सस्ते दामो पर हमारे

लिए अनेकानेक वस्तुएँ सुलभ कर दी हैं, लेकिन इसने हमें वह सुख नहीं दिया जिसकी लोगों ने उस समय आशा की थी जब कारखानों की चिमनियाँ धुआँ निकालने लगीं, रेलें दौड़ने लगीं और समुद्रों मे जहाज़ चलने लगे।

बहुत से साहसी व्यक्तियों ने मज़दूरों के बुनियादी अधिकारों के लिए संघर्ष किया। उदाहरणार्थ कारखानों मे काम के घण्टे सीमित कराने मे लम्बा समय लगा, क्योंकि मालिक इसके विरोधी थे। पाँच-छः वर्ष के बच्चों से कारखानों में काम लिये जाने पर कानूनी प्रतिबन्ध लगाने के पूर्व भी बहुत बहस हुई। अमेरिका मे इससे मिलता-जुलता सघर्ष 'नीग्रो' गुलामों के बारे मे था, जिनसे उनके रग के कारण बहुत बुरा व्यवहार किया जाता था और उन्हें काम नहीं दिया जाता था।

दक्षिणी अमेरिका के धनिक गोरे जमींदार जानते थे कि वे बिना गुलामों की मदद के रुई पैदा नहीं कर सकते। लेकिन उत्तर के कुछ भले लोगों ने स्वातन्त्र्य-घोषणा में स्वीकृत किये गए इस सिद्धान्त के अनुसार कि "सभी व्यक्तियों को 'स्वतन्त्र' और समान मानकर एक-सा व्यवहार किया जाय," गुलामी की प्रथा

समाप्त करने की कोशिश की। इसके फलस्वरूप उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका मे घोर गृहयुद्ध हुआ। गुलामी के विरुद्ध इस आन्दोलन का नेतृत्व महान् अमरीकी नेता अब्राहम लिकन ने किया। बड़ी-बड़ी कठिनाइयो का सामना करने के बाद लिकन की विजय हुई और उन्होंने १८६३ ई० मे मुक्ति का घोषणा-पत्र प्रकाशित किया, जिसके अनुसार सभी गुलाम स्वतन्त्र कर दिये गए। कुछ वर्ष बाद एक पागल व्यक्ति ने उनकी हत्या कर डाली, लेकिन उनका काम जारी रहा।

यूरोप के मजदूरों के घोर सघर्ष के बावजूद कई पीढ़ियों तक उनके अधिकारों को कोई मान्यता नहीं मिली। अक्सर इन सघर्षों का नेतृत्व जागृत मिल-मालिक स्वय करते थे। उदाहरण के लिए रावर्ट ओवन ने, जो कई सूती कपडे की मिलों का स्वामी था, एक 'समाजवादी समुदाय' की स्थापना की। लुई ब्लैंक नामक एक फ्रांसीसी लेखक ने एक 'सामाजिक यन्त्रालय' स्थापित करने की कोशिश की। दार्शनिक कार्ल मार्क्स और मिल-मालिक फ्रेडरिक एगेल्स ने उन कारणों का अध्ययन करने का प्रयत्न किया, जिनके फलस्वरूप मशीनी सभ्यता मनुष्य-मात्र को सुख-शान्ति देने मे असफल हुई। मार्क्स ने महसूस किया कि स्थिति खराब होने का कारण यही था कि पूँजीपति मजदूरों को गुलाम मजदूर के रूप मे बेच व खरीद सकते थे। अत १८६४ ई० मे उन्होंने मजदूरी करने वालो की पहली अन्तर्राष्ट्रीय सस्था का सगठन किया और १८६७ ई० मे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कैपिटल' का प्रथम भाग प्रकाशित किया।

मार्क्स ने कहा कि मशीन-युग के कारण समाज मे एक नये वर्ग (पूँजीपति वर्ग) का प्रादुर्भाव हुआ है। ये पूँजीपति अपनी बचत की रकम नये यन्त्र खरीदने मे खर्च करते है। मजदूर इन औजारों से और अधिक धन उपार्जित कर देते है।

इस तरह धनी दिन-प्रतिदिन और धनी होते जाते हैं और गरीब मजदूर दिन-प्रतिदिन गरीब होते जाते हैं। अत उन्होंने सभी देशों के मजदूरों को एक होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की सलाह दी।

मार्क्स और अन्य समाजवादियों के विचारों ने जोर पकड़ा। फलत बाद में इंगलैण्ड में मजदूर-दल अपनी प्रतिनिधि-सरकार बनाने में सफल हुआ। रूस मे, प्रथम विश्व-युद्ध के समय, समाजवादी और कम्युनिस्टों ने सफल क्रान्ति करके नई सोवियत सरकार की स्थापना की। इसे पूँजीपतियों और ज़मींदारों की विरोधी शोषित-वर्ग की तानाशाही के नाम से पुकारा जाता है।

हमारे युग ने समाज के दो वर्गों, समाजवादियों और पूँजीवादियों के बीच का संघर्ष झेला है। प्रत्येक स्थान पर लोग

सोच रहे हैं कि उन अनगिनत लोगों के रहन-सहन का स्तर कैसे सुधारा जाय जो अपनी मजदूरी से धन का सम्पूर्ण उत्पादन करते हैं। अणु-शक्ति जैसे वैज्ञानिक अन्वेषणों का प्रयोग यदि बमों के उत्पादन के लिए न किया जाय तो हमे इसकी आशा बँध सकती थी, क्योंकि यदि हम इसका और अन्य शक्तियों का उपयोग अधिकाधिक खाद्यान्नों और अन्य वस्तुओं के उत्पादन मे करते तो 'बहुतायत का युग' आ जाता।

लेकिन इन्सान के लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि वह मशीन का स्वामी है, उसका गुलाम नहीं। तभी वह मशीनों के कारण फैली समस्त बुराइयों पर नियन्त्रण करके मानव-मात्र की सुख-समृद्धि मे वृद्धि कर सकेगा। हमे अँग्रेज-मनीषी जेरमी-बेन्थम के इस विद्वत्तापूर्ण कथन को याद रखना चाहिए—"दूसरों को सुखी बनाना ही सुखी बनने का मार्ग है और दूसरों को सुखी बनाने का मार्ग उन्हें अपने प्रेम का आभास देना है। उन्हें अपने प्रेम का आभास देने का मार्ग ही वास्तव मे उनसे प्रेम करना है।"

एक था राजा

[१]

इन्सान की कहानी वहुत लम्वी है और उसके साथ-ही-साथ और वहुत सी कहानियाँ जुडी हुई हैं। उस सिलसिले की कुछ कहानियाँ इस पुस्तक में लिखी जा चुकी हैं। किन्तु मनुष्य ने दूसरे मनुष्य के साथ मिल-जुलकर रहना कैसे सीखा, इसकी सवसे महत्वपूर्ण कहानी अभी वाकी है। इसे अन्त में कहने के लिए मैंने इसलिए रख छोड़ा था, क्योंकि मेरा विश्वास है कि यदि हम इस कहानी से कुछ शिक्षा ग्रहण करें तो हमारी मानव-जाति युग-युग तक जीवित रह सकती है, नहीं तो हम निस्सन्देह नष्ट हो जायँगे।

हम लोगों ने देखा कि किस तरह घने-जंगलों के अँधेरे में रहने वाले आदिपूर्वजों की स्थिति पशुओं से शायद ही कुछ अच्छी थी। इस वात का हमें पता नहीं कि अपने आसपास के इन खतरों के वीच रहने वाला इन्सान कैसे सुरक्षित वचा रहा। लेकिन वन्दर की शक्ल के इन्सान से आज के इन्सान तक के शारीरिक विकास में भी हम उन गुणों को देख सकते हैं जिनके कारण उसे आज के इन्सान का स्वरूप प्राप्त करने में सहायता मिली है।

इस ससार का हमारा ज्ञान सीमित है। वहुत कम वस्तुओं के वारे मे ही हम निश्चित रूप से कुछ कह सकते हैं। उन्हीं मे से एक यह है—विकास एक ध्रुव सत्य है, यद्यपि इसका मार्ग सरल और सुगम नहीं। वास्तव में इतिहास का मार्ग सपाट मैदान में वहने वाली अवाध धारा के मार्ग की तरह सीधा और सरल नहीं। यह वीहड़ वनों और ऊँची-नीची घाटियों से

होकर जाता है। फिर यह टेढे-मेढे रास्तों से होता हुआ पुन प्रकट होता है। फिर भी सदैव यह मार्ग उन्नति के शिखर की ओर बढ रहा है। इसकी पहुँच एक निश्चित सीमा तक होती है। फिर यह उस ऊँचाई से एक गड्ढे मे स्थिर हो जाता है, यह पुन. किसी अन्य शिखर की ओर अग्रसर होता है, क्योंकि प्रत्येक शिखर क्षितिज पर के किसी उच्चतर शिखर या श्रेणी का रहस्य इसे बतलाता है।

उपरोक्त कथन की सत्यता हम इस परिवर्तन मे देख सकते हैं कि भोजन की तलाश मे भटकने वाले आदिम मनुष्य कैसे झोंपडियों मे बस गए और आसपास की भूमि पर अन्न उत्पन्न करने लगे।

इसी भौतिक परिवर्तन के साथ-साथ हम एक मनुष्य मे अन्य मनुष्यों के प्रति जो व्यवहार था उसमे मानसिक परिवर्तन के लक्षण भी देख सकते हैं। ऐसी अवस्था मे जानवरों का शिकार या भोजन एकत्र करने की होड मे दूसरे मनुष्य उनको शत्रु प्रतीत होते, किन्तु अब वे ही मित्र दिखाई पडने लगे, क्योंकि अब उन्होंने एक साथ मिलकर फसल उत्पन्न की।

[२]

भारत, मिस्र, रोम और चीन इन सभी प्राचीन सभ्यताओं मे जहाँ मनुष्य ने छोटे-छोटे गाँवों मे रहना प्रारम्भ कर दिया था, परस्पर अपनी कठिनाइयों और दुखो को एक-दूसरे से कहना भी शुरू किया और दूसरों के सुखों मे आनन्द का अनुभव करने लगे। प्राचीन काल मे ही उन्होंने एक-दूसरे की सहायता करना आरम्भ कर दिया। कुछ लोग अन्न उत्पन्न करते, अन्य लोग बरतन बनाते या कपडा बुनते अथवा लकड़ी का सामान बनाते या अपने गाँव वालों की ओर से रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते। अन्न पैदा करने वाले किसान जुलाहों से कपडा लेने के बदले मे

उन्हें कुछ अन्न देते। वे कुछ अनाज बढ़ई को देते जो उनके रथों को बनाता और उनकी मरम्मत करता था। ईश्वर से प्रार्थना करने के बदले में वे पुरोहितों या पादरियों को भेंट देते थे। उनके पास पर्याप्त भूमि थी। लोग कठिन परिश्रम करते थे और खेती की उपज के बँटवारे में कोई कठिनाई नहीं होती थी अथवा यदि होती भी तो नाम-मात्र के लिए।

बाद में जब वर्षा समय से नहीं हुई अथवा उन पर जंगली जानवरों ने आक्रमण किया तो उन्हें दूसरे प्रदेशों की ओर जाना पड़ा और यह पहले जैसा उपयोगी प्रमाणित नहीं हुआ। और शायद इस सम्बन्ध में कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं कि अच्छी भूमि पर किसका अधिकार हो और अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि किसके हिस्से पड़े। ऐसा प्रतीत होता है कि तब वे किसी स्थान पर एकत्र हुए और इस समस्या तथा अन्य प्रश्नों को हल करने के लिए उन्होंने गाँव के सबसे बूढ़े और बुद्धिमान् व्यक्ति को चुना।

प्राचीन काल में हमारे देश में पाँच अनुभवी वृद्धों या पचों को चुनने की प्रथा थी। इसी प्रथा से पंचायत का निर्माण हुआ।

हर प्रकार के झगड़ों का निपटारा पचायत द्वारा होता था। यदि किसी परिवार के पास पर्याप्त ज़मीन न होती तो उसे पचायत अतिरिक्त भूमि देती। यदि कोई कुम्हार सुस्ती दिखलाता और किसी खास किसान को घड़े न देता तो पचायत उसे काम करने और आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए कहती। भूमि अथवा चरागाहों पर किसी एक का स्वामित्व न होकर प्रत्येक का अधिकार होता था। अत प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों का सम्मान होता था। व्यक्ति के अधिकारों की उचित रक्षा होती है अथवा नहीं, इसकी देखभाल करने के अलावा पचायत खेतों मे पानी पहुँचाने तथा ऊबड-खाबड, खराब रास्तों की मरम्मत करने का कार्य भी सँभालती थी।

एक दिन अचानक कुछ अन्य खूँखार घुड़सवारों के दलों ने इस छोटे-से गाँव की सुख-निद्रा भंग कर दी। वे पशुओं के झुण्डों को खदेड़ते हुए आये। उन्होंने सारा वातावरण अशान्त और कोलाहलपूर्ण कर डाला। उनकी भाषा भी अजीब थी, जिसे ये ग्रामीण न समझ सके। उनके जंगली बरताव और चाल-ढाल से यह पता चला कि वे कोई अच्छा कार्य करने के लिए न निकले थे। यदि किसान उनके लिए उपजाऊ ज़मीन छोड़कर अन्यत्र न भाग जाते तो वे उनसे लड़ने के लिए तैयार थे। घुड़सवारों के इस दल का नेता एक व्यक्ति था जो दूसरों की अपेक्षा देखने में अधिक हृष्ट-पुष्ट था। वह दल का सरदार था। उसकी आज्ञा का पालन होता था। गाँव के उन पाँच वृद्धों और सीधे-सादे शान्तिप्रिय ग्रामीणों के पास लुटेरों का मुकाबला करने के लिए उनके जैसे हथियार न थे। गाँव वालों ने आत्म-समर्पण कर दिया और उस सरदार तथा उसके घुड़सवारों ने गाँव का शासन

सॅभाला। इसी प्रकार सबसे पहले राजा का अस्तित्व हुआ।

इन छोटे-छोटे सरदारों या राजाओ ने अपने दल या अपने सिपाहियों की शक्ति के मुताबिक एक, दो या सौ-सौ गॉवों पर शासन किया। इस काल मे एकमात्र शारीरिक शक्ति या पशुबल ही पर्याप्त था। यदि किसी राजा के यहॉ कोई शक्तिशाली वीर होता, जिसे वह अन्य गॉव वालो को परास्त करने के लिए भेज सकता, तो राजा इस प्रकार अपने कब्जे मे और भी अधिक भूमि कर लेता। इस तरह वह शक्तिशाली हो गया और उसने एक दरबार की स्थापना की तथा कर्मचारियों का चुनाव किया जिनका कार्य उसकी आज्ञाओं का पालन करना था। अपने अधिकृत छोटे-से राज्य के लोगों से उसने अनाज संग्रह किया और एक कुशल सेना तैयार की। फिर यदि वह अपने पडोसी राजाओं से अधिक शक्तिशाली होता तो वह उन अन्य राजाओ के प्रदेश मे 'अश्वमेध' घोडा भेजकर उन्हें युद्ध के लिए चुनौती देता। किसी अन्य राजा द्वारा घोडे के रोके जाने पर चुनौती स्वीकृत मानी जाती और दोनों राजाओ की सेना मे युद्ध होता। जो फौज अधिकाधिक विपक्षियो को मार गिराती और दुश्मनो के हथियारों को नष्ट करती, उसकी जीत समझी जाती। उसका राजा अन्य राजा की जमीन को अपने राज्य मे मिला लेता। इस प्रकार विशाल सेना वाले राजा ने बहुत से छोटे-छोटे और निर्बल राजाओं को हराकर अपने अधीन कर लिया और वह राजाओं का भी राजा बन बैठा। वह महाराजा या शाहंशाह के नाम से पुकारा जाने लगा।

हमारे देश मे हजारो वर्ष तक इसी प्रकार के राजाओ का युग रहा। किन्तु सरकार का वह स्वरूप, जिसका उन्होंने निर्माण किया था, बहुत-कुछ उसी ढग का रहा जिस तरह कि वह ग्रामवासियो के लोकतन्त्र शासन-काल मे था, क्योकि जब राजाओ ने इन

गाँवों को जीता तो उन्होंने भूमि पर अधिकार जमाना प्रारम्भ नहीं किया, यद्यपि भूमि पर उनके कुछ अधिकार अवश्य थे। उदाहरणार्थ वे अपने खजाने के लिए प्रत्येक किसान से उसकी उपज मे से कुछ अनाज कर के रूप मे लेते थे। वे अपने घोड़ों के लिए चरागाहों से घास और शिकार करने के लिए कुछ जंगल सुरक्षित रख छोड़ते थे। इसके वदले में वे जंगली जानवरों तथा अन्य शत्रुओं से सेना की सहायता से गाँव वालों की रक्षा करते थे, जिनको वे गाँव वालों से ही इकट्ठा किया हुआ अनाज खाने को देते थे। वे कुओं और खाइयों की देखभाल और सड़कों की मरम्मत करवाते थे। ग्रामीणों से उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध शायद ही स्थापित हो पाता था, किन्तु वह कर सग्रह या कर वसूल करने वाले के माध्यम से ही रहा। यही व्यक्ति हर फसल के अवसर पर राजा के भाग का अनाज ले जाता। अनाज सग्रह कर लेने के वाद वह उसे ऊँटों पर लादकर किसी वड़े गाँव या नगर को ले जाता। राजा ने ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा हुआ मकान यहाँ वनवाया जिसे किले के नाम से पुकारते थे। कर-संग्रहक गाँवों के समाचार भी राज्य में पहुँचाता था। सम्भवत कुछ ग्रामीण, जिन्हें अपनी फरियादें सुनानी होतीं, इसी कर-संग्रहक के माध्यम से अपनी वात राजा तक पहुँचाते। उसे वह राजा के सम्मुख रखता, जो अपने वहादुर सिपाहियों और सभासद विद्वानों के वीच वैठा करता था। राजा ग्रामीणों की फरियाद वड़े ध्यान से सुनता और अपने सभासदों की राय से वह यह निश्चित करता कि किस मामले में क्या किया जाय। सम्भवत शिकायत के पात्र, प्रतिवादी या मुदालेह को वुलाया जाता था। इसके लिए सिपाही भेजे जाते, वे उसे पकडते और राजा के पास ले आते। तव वादी और प्रतिवादी दोनों को अपनी-अपनी वात कहने का अवसर दिया जाता। इसके वाद राजा अपनी न्याय-वुद्धि से सभासदों से राय

था कि भूमि के प्रति भारतीय राजाओं के थोड़े ही अधिकार थे (जैसे वे अपनी सेनाओं की मदद से ग्रामीणों की रक्षा का भार वहन करते जिसके बदले मे वे कर लेते थे) जबकि अँग्रेज राजा पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में 'ईश्वरप्रदत्त अधिकार' के सिद्धान्त के मुताबिक भूमि के अधिपति या स्वामी थे। वे जब अपने सभासदों को भूमि देते थे तो अमीर सरदार भी भूमि के स्वामी बन गए। ग्रामीण जन उनकी भूमि में आसामी या उनकी प्रजा बनकर परिश्रम करते थे।

कुछ काल के पश्चात् ये सरदार नवाब या 'बैरन' कहे जाने लगे, जिनके पास काफी जमीन हो गई और उनकी शक्ति भी उसी प्रकार बहुत बढ़ गई। किंग जॉन नामक राजा के शासन-काल में ये नवाब एक जगह सभा करने के लिए इकट्ठे हुए और उन्होंने 'मैग्ना कार्टा' नामक कुछ विशेष अधिकारों के पत्रक पर राजा के हस्ताक्षर करवाए। इस पत्रक ने राजा की शक्ति को सीमित कर दिया और देश की राष्ट्रीय सरकार में सरदारों को अच्छा प्रतिनिधित्व प्रदान किया।

बाद मे अँग्रेजों के इतिहास मे राजा जॉन के ही समय के नवाबों या 'बैरनों' के उत्तराधिकारियों ने फिर से सभा की और राजा की शक्ति व उसके अधिकारों को और भी अधिक सीमित कर दिया। इस सम्पूर्ण काल की प्रजा या आसामी बिलकुल गुलामों की तरह पिसते थे।

इसके और भी बाद छोटे-छोटे सरदारों और व्यापारियों ने राजा के 'ईश्वरीय अधिकार' के सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह किया और उन्होंने ऑलिवर क्रामवेल के नेतृत्व मे अपने लोकतन्त्र शासन की स्थापना की। वास्तव मे पुराने 'बैरन' या नवाब अँग्रेज राजवंश के उत्तराधिकारियों को पुन शक्ति दे गए और

लेकर अपना निर्णय देता।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस प्रकार का सीधा-सादा और समुचित ढग का न्याय भारत मे अठारहवीं शताब्दी तक प्रचलित रहा और भारतीय राज्यों-रजवाडों मे तो, जहाँ राजा-महाराजाओं का शासन था, पिछले कुछ वर्षों तक भी।

ये राजा अथवा महाराजा सर्वशक्तिमान थे, क्योंकि इनके पास सेना, सिपाहियों की शक्ति, सभासद और अन्य नौकर थे। यदि किसी अन्य शक्तिशाली राजा ने और अधिक वडी व शक्तिशाली सेना के सहारे उनका सिंहासन छीन लिया तो यह नया राजा उसकी शक्ति को भी प्राप्त कर लेता था। सेना की शक्ति, प्राणघातक हथियारो से सुसज्जित सिपाहियो की शक्ति—किसी भी प्रकार से शक्ति—वडी ही महत्त्वपूर्ण ताकत थी। एक कहावत है—"जिसकी लाठी उसकी भैंस।'

[४]

पन्द्रहवीं, सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी मे आने वाले यूरोपीय आक्रमणकारियों के अपने-अपने देश मे उनके राजा थे। और जब बरतानिया के लोगों ने भारत पर विजय प्राप्त की तो इगलैण्ड के राजा भारत के सम्राट् बन गए। शक्ति अथवा अधिक बलशाली का सिद्धान्त यहाँ भी लागू हुआ।

किन्तु ब्रिटेनवासियों के इस देश मे पैर रखने के साथ-ही-साथ हमे यूरोप मे होने वाली कुछ घटनाओ का पता चला जो वहाँ पहले घट चुकी थीं और जो साम्राज्य की शक्ति के सारे सिद्धान्त को एक नया रूप दे रही था।

ग्रेट ब्रिटेन मे भी आक्रमणों के माध्यम से ही और जगहो की तरह राज्य का सिद्धान्त विकसित हुआ तथा राजा ने अपने कुशल सिपाहियों और सरदारो को अपना सभासद नियुक्त किया।

भारतीय राजाओ और अँग्रेज राजाओं मे केवल यही अन्तर

था कि भूमि के प्रति भारतीय राजाओं के थोड़े ही अधिकार थे (जैसे वे अपनी सेनाओं की मदद से ग्रामीणों की रक्षा का भार वहन करते जिसके वदले मे वे कर लेते थे) जबकि अँग्रेज राजा पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में 'ईश्वरप्रदत्त अधिकार' के सिद्धान्त के मुताविक भूमि के अधिपति या स्वामी थे। वे जब अपने सभासदों को भूमि देते थे तो अमीर सरदार भी भूमि के स्वामी बन गए। ग्रामीण जन उनकी भूमि में आसामी या उनकी प्रजा बनकर परिश्रम करते थे।

कुछ काल के पश्चात् ये सरदार नवाब या 'वैरन' कहे जाने लगे, जिनके पास काफी जमीन हो गई और उनकी शक्ति भी उसी प्रकार बहुत बढ़ गई। किंग जॉन नामक राजा के शासन-काल में ये नवाव एक जगह सभा करने के लिए इकट्ठे हुए और उन्होंने 'मैग्ना कार्टा' नामक कुछ विशेष अधिकारों के पत्रक पर राजा के हस्ताक्षर करवाए। इस पत्रक ने राजा की शक्ति को सीमित कर दिया और देश की राष्ट्रीय सरकार मे सरदारों को अच्छा प्रतिनिधित्व प्रदान किया।

वाद में अँग्रेजों के इतिहास मे राजा जॉन के ही समय के नवाबों या 'वैरनों' के उत्तराधिकारियों ने फिर से सभा की और राजा की शक्ति व उसके अधिकारों को और भी अधिक सीमित कर दिया। इस सम्पूर्ण काल की प्रजा या आसामी बिलकुल गुलामों की तरह पिसते थे।

इसके और भी वाद छोटे-छोटे सरदारों और व्यापारियों ने राजा के 'ईश्वरीय अधिकार' के सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह किया और उन्होंने ऑलिवर क्रामवेल के नेतृत्व में अपने लोकतन्त्र शासन की स्थापना की। वास्तव में पुराने 'वैरन' या नवाव अँग्रेज राजवंश के उत्तराधिकारियों को पुन शक्ति दे गए और

इगलैण्ड मे फिर से राजा होने लगे। किन्तु एक सभा निरन्तर विकसित हुई जिसे 'पार्लमेण्ट' कहते है और जिसमे व्यापारियों के प्रतिनिधि होते थे। किन्तु राजा की शक्ति बराबर सीमित रही।

पार्लमेण्ट पर व्यापारियो का यह आधिपत्य आगे चलकर और ढीला किया गया। उन विद्वानों ने, जिन्होंने यूनान और रोम के इतिहास तथा यूरोप महाद्वीप मे होने वाली घटनाओं से कुछ ज्ञान उपार्जित किया था, इन सकुचित पिछडे हुए धनी लोगों के विरुद्ध जोरदार शब्दो मे अपने उग्र विचार लिपिबद्ध किये।

[५]

इन सबमे बडी और महत्त्वपूर्ण घटना फ्रास की राज्य-क्रान्ति थी। क्रॉमवेल की क्रान्ति से इगलैण्ड मे राजाओं के दैवी या ईश्वरप्रदत्त अधिकारों के सिद्धान्त के स्थान पर 'पार्लमेण्ट' के अधिकारो की प्रतिस्थापना हुई। परन्तु फ्रास मे राजाओ द्वारा दैवी अधिकारों का उपयोग अभी तक उसी तरह होता था जिस तरह वे करते आए थे। फ्रास के राजागण यूरोप के अन्य राजाओ को आपस मे लडाकर अभी भी शक्तिशाली बने हुए थे। उन्होंने व्यापारियो को धनोपार्जन करने की पूरी छूट दी और दूर-दूर देशों से व्यापार करने मे सहायता पहुँचाई।

यूरोप और विशेषत इंगलैण्ड से बहुत से छोटे-छोटे व्यापारी और गरीब किसान हाल मे खोजे हुए नये महाद्वीप अमेरिका मे बसने के लिए पहुँच गए थे। लेकिन इस नये देश का शासन अँग्रेज राजाओं के अधीन था और यहाँ के लोग अँग्रेज राजाओं के कठोर शासन को पसन्द नहीं करते थे, अत उन्होंने बराबर उनका तीव्र विरोध किया और अठारहवीं शताब्दी के अन्त मे उन्होंने अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह खड़ा करके अपना लोकतन्त्र स्थापित किया। प्रत्येक व्यक्ति और उसके अधिकारों की समुचित रक्षा के सिद्धान्त पर निर्भर अमरीकी स्वतन्त्रता की घोषणा ने सारी दुनिया मे एक नई क्रान्ति का सचार किया।

[६]

लगभग इसी समय फ्रांस मे वॉल्टेयर और मॉण्टेस्क्यू नामक दो विद्वान् इसका जोरदार प्रचार कर रहे थे कि सभी मनुष्यों को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। वे धार्मिक व राजनीतिक अत्याचारों के कट्टर विरोधी थे। स्विट्जरलैंड-निवासी रूसो ने लिखा कि आदि-कालीन प्राचीन समाज मे मनुष्य अधिक सुखी था। उसने राजतन्त्र के सिद्धान्त का खण्डन भी किया। डिडेरॉट, डी एलेम्बर्ट,

'जैकोबियन' कहे जाने वाले उग्र विचार के लोगों मे 'गिरोण्डिस्ट' नामक शान्तिप्रिय लोगों के प्रति दुश्मनी जाग गई और कई 'गिरोण्डिस्ट' लोगों को प्राणदण्ड दिया गया अथवा उन्होंने आत्महत्या कर ली।

सन् १७९३ ई० के अक्तूबर मास मे 'जैकोबियनों' ने सविधान को स्थगित कर दिया और डाण्टन तथा रॉबेस्पियर जैसे क्रान्तिकारियों के नेतृत्व मे जन-सुरक्षा करने वाली एक छोटी कमेटी या सस्था ने शासन के सारे अधिकारों को हस्तगत कर लिया। इस सस्था ने ईसाई धर्म और पुराने केलैण्डर की समाप्ति कर दी। किन्तु अब उस भयानक विनाशकारी शासन का प्रारम्भ हुआ जिसमे प्रतिदिन ५० से लेकर ८० मनुष्य तक कत्ल किये जाते थे, चाहे वे अच्छे होते अथवा बुरे।

राष्ट्रीय सभा के सदस्य अन्त मे रॉबेस्पियर के दुश्मन बन गए और वे उसे पकडकर 'गिलोटीन' करने ले गए। सन् १७९४ की २७ जुलाई को इस खौफनाक शासन का अन्त हुआ और पेरिस ने सुख शान्ति के दिन देखे।

फ्रास के ऐसे अशान्त वातावरण को देखते हुए यह आवश्यक हो गया कि देश का शासन तब तक कुछ शक्तिशाली लोगों के हाथों मे रहे जब तक कि जन-क्रान्ति के विरोधी कुचले नहीं जाते। अत चार वर्ष तक के काल मे, जब कि फ्रास की सेनाऍ विदेशियों से लडने मे लगी रहीं, फ्रास का शासन-सूत्र पॉच सचालकों द्वारा सॅभाला गया। बाद मे नेपोलियन बोनापार्ट नामक तरुण सेनापति को सारे अधिकार सौप दिये गए जो सन १७९९ मे फ्रास का सर्वप्रथम कॉन्सल या राज-प्रतिनिधि बनाया गया।

[७]

अगले पन्द्रह वर्ष मे रण-श्रेष्ठ वीर नेपोलियन ने फ्रास की सेना को शक्तिशाली बनाया। उसके हृदय मे यूरोप के

समस्त देशों को अधिकृत कर एक ही शासन सूत्र में पिरोने की इच्छा जागी।

१७८९ ई० और १८०४ ई० के बीच नेपोलियन फ्रास के जन-क्रान्ति-सम्बन्धी विचारों के प्रति काफी वफादार रहा। 'स्वतन्त्रता, भाईचारा और समानता' ही उसकी सेना के नारे थे। १८०४ ई० मे उसने अपने-आपको फ्रास का महाराजा घोपित कर दिया। इसके साथ ही उसने गरीबों और दलितों के प्रति अपनी पूर्व-परिचित सहानुभूति का भाव भुला दिया और वह अन्य देशों की विजय के लिए निकला।

मिस्र के रास्ते उसने भारत पर आक्रमण करने का विचार किया, परन्तु अंग्रेजी जल-सेना की प्रवल शक्ति के कारण उसे नील नदी से वापस लौट जाना पड़ा। इसके पश्चात् स्पेन के दक्षिण-पश्चिमी समुद्र-तट पर 'ट्रैफालार' नामक प्रायद्वीप मे नेल्सन नामक अग्रेज जल-सेना-नायक ने नेपोलियन के वेड़े को नष्ट कर डाला। यदि महत्त्वाकाक्षा ने नेपोलियन को अन्धा न कर दिया होता तो वह अपने को वचाने मे समर्थ होता। किन्तु यूरोप के छोटे-मोटे देशों पर हमला करने के पश्चात् उसने रूस पर हमला कर दिया। अपनी सारी सेना को इकट्ठा करके उसने मास्को की ओर प्रयाण किया। क्रेमलिन राजमहल पर उसने कब्ज़ा कर लिया, किन्तु १८१२ के सितम्बर मास की पन्द्रहवीं तारीख की रात

के समय मास्को मे भीषण आग लग गई और नेपोलियन ने अपनी सेनाओं को वापस लौटने का हुक्म दिया।

अब रूसियों को उसकी विशाल सेना पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया। कुछ वीरों को छोडकर नेपोलियन की लगभग सारी सेना नष्ट कर दी गई। यूरोप के लोग अब नेपोलियन को घृणा की दृष्टि से देखने लगे।

रूसी फौजों से हार खाकर वह पैरिस लौटा। भूमध्यसागर के एल्बा नामक द्वीप मे उसे देश-निकाला देकर भेज दिया गया। उसका छोटा पुत्र गद्दी पर बिठाया गया, किन्तु उसके दुश्मनो और विरोधी शक्तियों ने लुई सोलहवें के भाई अठारहवे लुई को नेपोलियन के बदले गद्दी पर बिठाया।

यह नया राजा मूर्ख और आलसी था।

१ मार्च, १८१५ के दिन नेपोलियन फ्रास के दक्षिणी भाग मे प्रविष्ट हुआ। लुई की सेना हताश हो गई। नेपोलियन ने पैरिस की ओर कूच किया और उस पर कब्जा कर लिया।

उसने अब अपने शत्रुओं से सन्धि करने की कोशिश की, परन्तु वे उसे बरबाद करने पर तुले हुए थे। १८१५ के जून के महीने मे उसने बेल्जियम की ओर प्रयाण किया और सेनापति ब्लूचर द्वारा सचालित जर्मन फौजों को हराया। उसकी फौज के सेनापति हराई हुई फौज को नष्ट करने से चूक गए। दो दिन पश्चात् नेपोलियन को वेलिंगटन के अँग्रेज ड्यूक से लडना पडा। उसकी जीत निश्चित दिखाई देती थी। अचानक कुछ घुडसवारों के साथ ब्लूचर लौटा और उसने फ्रासीसी सेना मे गडबडी मचा दी। फ्रास के इस महान महत्त्वाकाक्षी नेता का इस प्रकार अन्त हुआ। अपने दुश्मनो से उसने अच्छा व्यवहार प्राप्त करने की कोशिश की, परन्तु उसे सेण्ट-हेलेना नामक महाद्वीप मे निर्वासित कर दिया गया जहाँ ६ वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई।

अपनी मृत्यु के पूर्व तक बराबर उसका यह दावा था कि वह जन-क्रान्ति के सिद्धान्तों 'स्वतन्त्रता, भाईचारा और समानता' का सच्चा समर्थक रहा है।

नेपोलियन के निर्वासन-काल में उसके विजेताओं ने फ्रांस की जन-क्रान्ति के अच्छे-अच्छे विचारों को समाप्त करने की कोशिश की। सारे नये विचारों का दमन करके उन्होंने शान्ति स्थापित करने की युक्ति निकाली। परिणामस्वरूप यूरोप के जेल-खाने उन लोगों से ठसाठस भर गए जो इसमें विश्वास करते थे कि जनता को अपने शासन में भाग लेने का अधिकार है।

[८]

किन्तु प्रत्येक राष्ट्र में स्वतन्त्रता के प्रेम ने जोर पकड़ा।

दक्षिणी अमेरिका में स्पेन के राजा की प्रभुता को समाप्त करके स्वतन्त्र लोकतन्त्र की स्थापना हो गई थी। जब से कोलम्बस ने इस महाद्वीप का पता लगाया था तब से इस विस्तृत प्रदेश पर स्पेन वालों का शासन था। आस्ट्रिया, ब्रिटेन और रूस जैसी यूरोप की महान् शक्तियाँ स्वतन्त्रता की इस विकसित भावना को रोकने में असमर्थ थीं। हर जगह एक नया जोश उमड़ रहा था। यूरोप के समस्त राष्ट्रों का वर्तमान स्वरूप उसमें से विकसित होकर हमारे सामने आया है। अंग्रेजों की क्रान्ति ने, जिससे पार्लमेंट का विकास हुआ था, अधिकतर लोगों के मन में अपना स्थान बना लिया था। इस प्रकार अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा ने लोगों को प्रभावित किया। फ्रांस की जन-क्रान्ति के नारों का भी प्रभाव बहुत व्यापक हुआ और इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त एक नवीन आशा के जन्म की सूचना देकर हुआ। राजाओं का प्रभुत्व बहुत-कुछ सीमित हो चुका था और वास्तव में पार्लमेण्टरी या विधानगत शासन का प्रारम्भ हो गया था।

इन सभाओं के सभासद अधिकतर व्यापारी और राजनीतिज्ञ थे। वे अपने अधिकृत देशों एशिया, अफ्रीका तथा दुनिया के अन्य भागों में 'जनता का शासन, जनता द्वारा शासन और जनता के लिए शासन' के जनतान्त्रिक उसूल को कार्य के रूप मे परिणत करने के लिए वास्तव मे अधिकतर तत्पर नहीं थे, क्योंकि वे अपने-अपने देश मे तैयार किया हुआ माल वहाँ वेचते थे, और कपास, जूट, रवर, टीन तथा अन्य कच्चा माल वहाँ से लेते थे।

अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा ब्रिटेन ने इसका प्रारम्भ पहले किया था, जिन्होंने अपने साम्राज्य का वहुत अधिक विस्तार किया, जिसका एक भाग भारत भी था। अंग्रेजों ने डच, पुर्तगालियों और फ्रासीसियों को हरा दिया। दुनिया के सारे भागों मे इन राष्ट्रों के छोटे-छोटे उपनिवेश फिर भी शेप वचे रहे।

जर्मनी के पास कोई उपनिवेश न था। इस राष्ट्र के लोगों मे सगठन देर से हुआ और अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी प्रभुता जमाने मे समर्थ न हुए थे। लेकिन इस वीच इन्होंने मशीन का उपयोग शुरू कर दिया था। फलत वे अत्यधिक मात्रा मे माल तैयार करने लगे। क्योंकि इतने अधिक माल की खपत इनके अपने देश मे नहीं हो सकती थी, इसलिए जर्मनी के शासक हमेशा विदेशी वाजार और उपनिवेशों के लिए लालायित रहे।

इन उपनिवेशों मे स्वय चेतना का उदय हो रहा था। हमारे देश भारत मे महान राष्ट्रीय संग्राम छिड गया। देश के कुछ श्रेष्ठ विचारकों ने स्वतन्त्रता की उत्कट अभिलाषा प्रकट की और अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आवाज उठाने के परिणामस्वरूप जेल मे ठूँस दिये गए। तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, मोतीलाल नेहरू, सी० आर० दास, जवाहरलाल नेहरू जैसे महापुरुषों के विचारों से देश की जनता का हृदय और मस्तिष्क पूर्णत भर गया।

किन्तु यूरोप की शक्तियों ने हमारी स्वतन्त्रता की अभिलाषा को भुलाकर उसकी अवहेलना की। उनमें अभी भी लोभ बना हुआ था और वे आपस में लड़ने को तैयार थे।

[१०]

१९१४ ई० में जर्मनी के कैसर ने बेल्जियम पर आक्रमण किया और प्रथम विश्वयुद्ध का श्रीगणेश हुआ। ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और यूरोप की अन्य छोटी-बड़ी शक्तियाँ एक ओर थीं और जर्मनी दूसरी ओर। चार वर्ष के भयंकर संहार व विनाश के पश्चात् मित्रराष्ट्रों का दल विजयी हुआ और वर्साई नामक स्थान में सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए।

युद्ध-काल में लेनिन के नेतृत्व में रूसी समाजवादियों और साम्यवादियों ने ज़ार नामक अपने राजा के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह किया। उन्होंने रूस में एक नये साम्यवादी सोवियत् लोकतन्त्र की स्थापना की।

दुर्भाग्य से जर्मनी को बुरी तरह पगु बनाया गया और उसे मित्रराष्ट्रों को भारी हरजाना चुकाना पडा। इस तरह उसे समृद्धि-शाली राज्य बनने से वचित किया गया।

राष्ट्र-सघ, जिसकी स्थापना मित्रराष्ट्रों ने की थी, शीघ्र ही चार या पाँच बडी शक्तियों द्वारा छोटे और बडे अन्य सभी राष्ट्रों को निर्बल बनाए रखने का प्रधान साधन बन गया। कुछ काल तक सोवियत् रूस को भी मित्रराष्ट्रों द्वारा स्थापित राष्ट्र-सघ मे

प्रतिनिधित्व नहीं मिला।

[११]

जर्मनी के धनी व्यक्तियों ने वर्साई की सन्धि के विरुद्ध विष उगला। अपने अधिकारों की जोरदार माँग करने के लिए उन्होंने अपनी सेना के एक भूतपूर्व उपनायक की सहायता ली।

मुसोलिनी के बहुत से विचारों को हिटलर ने अपनाया था। इटली के उस पत्रकार ने शक्तिशाली पुलिस और फौज की मदद से जन-साधारण के हित की उपेक्षा करके इटली मे धनी लोगों का शासन स्थापित किया था। अपने भाषणों और विरोधियों के प्रति आग उगलने में हिटलर अपने गुरु से भी बढकर एक कदम आगे निकल गया था।

ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन तथा अन्य जगहों के घृणित लोगों ने हिटलर की सहायता भी की, क्योंकि वे आधुनिक प्रबल शक्ति के रूप में तेजी के साथ विकसित होने वाले कम्युनिस्ट राष्ट्र रूस को नष्ट करने के लिए उसे उससे लडाना चाहते थे। साम्राज्यवादियों ने जापानी धनी-वर्गों और युद्ध-लोलुप दलालों को चीन पर हमला करने के लिए उकसाया। वहाँ राजा को समाप्त कर दिया गया था और डॉ० सनयात-सेन के नेतृत्व में लोकतन्त्र स्थापित हो चुका था।

एडल्फ हिटलर ने जर्मन स्थल-सेना और जल-सेना का सग-

ठन किया और दृढ वायु-सेना सुसज्जित की। उसने मु
जापान के फासिस्टों और जगी शक्तिवादियो का गुट
१६३६ के सितम्बर मास मे उन्होने पोलैण्ड पर आक्रमर
क्योकि पोलैण्ड-वासी उन्हे डाजिग नामक अपना व
नहीं देते थे। इस तरह द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो ग

यह विश्व-व्यापी महायुद्ध लगातार सात वर्ष त
रहा। वह प्रथम महायुद्ध से भी भयकर था।

इसी महायुद्ध के दौरान मे ब्रिटेन, फ्रास, अमेरिका,
और चीन का गठबन्धन हुआ।

बडी कठिनाइयो के पश्चात् हिटलर, मुसोलिनी और जा
सेनाओं की पराजय हुई। इस महायुद्ध से ससार बुरी तर
विकृत हुआ और उसे गहरे घाव लगे।

[१२]

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा ब्रिटे
चर्चिल ने एक घोषणा-पत्र प्रसारित किया था कि सारे विश
स्वतन्त्रता स्थापित करने के लिए द्वितीय महायुद्ध लडा जा रहा
इस घोषणा-पत्र को 'एटलाण्टिक चार्टर' के नाम से पुकारा
था। महात्मा गाधी ने ब्रिटिश सरकार तथा पश्चिमी राष्ट्र
भारत तथा अन्य उपनिवेशो मे 'एटलाण्टिक चार्टर' के वि
को कार्यरूप मे परिणत करने की जोरदार माँग की, क्योकि भा
हिन्देशिया, बर्मा, लका, मलाया इत्यादि प्रदेशो मे अं
करीब-करीब वैसा ही कार्य कर रहे थे जैसा कि हिटलर
मुसोलिनी ने जर्मनी और इटली मे किया था। अँग्रेज सरक
जोरदार माँग और चुनौती का उत्तर गाधी और नेहरू स
उच्च श्रेणी के समस्त अग्रगण्य नेताओ को कैद करके दिया

[१३]

दूसरे महायुद्ध के पश्चात भारतीय चुपचाप न बैठे रह सके।

अँग्रेज़ों से अपने देश की स्वतन्त्रता की माँग की। अतः भारत छोड़ने के लिए अँग्रेजों पर दबाव डाला गया। 'फूट डालो और राज्य करो' अपनी नीति के आधार पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का विभाजन करके उन्होंने भारत छोड़ा। लेकिन अब अगस्त, १९४७ से हम स्वयं अपने देश के स्वामी हो गए हैं और हम लोग मनुष्य-मात्र में परस्पर शान्ति और सद्भावना के विचारों को फैलाने में संलग्न हैं, जिन्हें हम लोगों ने उज्ज्वलतर भूतकाल से परम्परागत पाया है।

[१४]

यह दुःख की बात है कि उन बड़ी शक्तियों ने, जिन्होंने संयुक्तराष्ट्र संघ का संगठन युद्ध के पश्चात् विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए किया था, अब शब्दों और धमकियों का निष्क्रिय युद्ध छेड़ दिया है और अब आपस मे गुस्से से एक-दूसरे की ओर दाँत पीस रही हैं।

निष्क्रिय युद्ध के नारों ने लोगों को यह समझने से रोक रखा है कि अच्छी सरकार का वास्तविक शत्रु विश्व के अधिकाश लोगों की भूख और गरीबी है। हथियारों की शक्ति के बल पर कम्युनिज्म को हराने का सिद्धान्त, जिसका अनुगमन पश्चिम के कुछ राष्ट्र कर रहे हैं, एशिया और अफ्रीका के उपनिवेशों में बसने वाले लोगों की स्वतन्त्रता की आन्तरिक

पुकार को व्यक्त करने से रोकता है।

इस निष्क्रिय युद्ध मे हमारे देश के लोग तटस्थ होने का निश्चय कर चुके है और हमारे प्रधान मन्त्री ने निरन्तर इस ओर कोशिश और कठिन यत्न किया है कि सारी बडी शक्तियाँ इकट्ठी हों ताकि उनसे पारस्परिक मतभेदों पर वादविवाद किया जा सके और संसार मे शान्ति का वातावरण तथा मानसिक स्थिति उत्पन्न हो। भारत मे दीर्घकालीन शान्ति के बिना देश के लोगों को अच्छा भोजन, मकान, वस्त्र और अच्छी सरकार के सुलभ होने की कोई आशा नहीं हो सकती।

सारी दुनिया पर जो अन्धकार छा गया है उसे दूर करना है। इन्सान बहुत प्रगति कर चुका है। एटम बम और हाइड्रोजन बम से वह अपना सर्वनाश नहीं होने देगा। एक अच्छे ससार का निर्माण वह कर सकता है और अवश्य करेगा।

आशा है कि इन्सान की यह कहानी प्रकाश की किरणों को बिखेरेगी और घिरे हुए अन्धकार के आवर्त को चीरने मे सहायक सिद्ध होगी। इस कहानी की ज्योति आपकी आँखों की रोशनी बनकर चमके। आपकी आशापूर्ण उत्सुक आँखे ही हमारे उज्ज्वल भविष्य की प्रतीक है।